चुना गा था और उनमें मेरी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। सोचता हूँ, यदि उसी प्रकार आज तक लिखता रहता तो अवश्य ही मेरा नाम प्रतिष्ठित कहानीकारों के साथ लिया जाता। स्वाभाविक था, एक नये-नये लेखक का परिचय जब किसी ऐसे व्यक्ति से हो जो उसकी रचनाएँ पढ़ने में उत्सुकता दिखाये, तो यह उसके लिए मूल्यवान क्षण था। तन्नो ने भी मेरे लेखक के प्रति जब श्रद्धा और सम्मान का भाव व्यक्त किया तब मुझे बहुत भला लगा, बहुत ही सुखद और प्रेरणादायक! सोच ही रहा था कि मैं उसका किन शब्दों में धन्यवाद दूँ कि उसने कहा, "मेरी भी कहानी लिखिए न! लिखेंगे?"

"आपकी कहानी···" मैं कोई हलकी बात कह कर फिर से परिहास करने ही वाला था कि अनायास ही उसकी ओर दृष्टि उठ गयी। उसकी आँखों में एक विचित्र उदासी तैर गयी थी। कुछ क्षण पूर्व जो लाली और भोलापन था, वह अब गायब हो चुका था। न जाने क्यों मुझे लगा, वह अब रोयी, अब रोई। एक क्षण शांति रही। पलकें झपका कर उसने उमड़ते आँसुओं को पी लिया, फिर होंठों को जबरदस्ती फैला कर बोली, "जानते हैं, मेरे बाबू ने ही चाचा को बताया था आपके बारे में। फिर चाचा के तय कर आने पर मैं भी गयी थी चाची के साथ आपको देखने। किराये पर मकान ढूँढ़ने का बहाना मैंने ही उन्हें सुझाया था। आपकी शादी मैंने करवा दी और अब लड़का होने वाला है, बोलिए मुझे मिठाई कब खिलवा रहे हैं आप···!" मैं समझ नहीं पा रहा था कि कहानी की बात के बाद यह विषय-परिवर्तन क्यों होने लगा अचानक, पर बाद में समझा वह विषय-परिवर्तन नहीं था, उसी के संदर्भ में सारी बातें थीं।

प्रदीप के जन्म का समय तन्नो का उत्साह देखने योग्य था। इधर स्वतन्त्रता के बाद से तो मैंने खद्दर पहनना शुरू कर दिया है और अधिकतर कुर्ता-पाजामा ही पहनता हूँ, क्योंकि इस पोशाक से अफसरों और इन्सपेक्टरों को प्रभावित करने में जल्दी सफलता मिलती है। पर उन दिनों तो सूट-बूट में ही अधिक रहता था। उस समय का मेरा चित्र अब भी मेरे पास है। उस चित्र और आज के प्रदीप में मुझे बहुत समानता दिखायी देती है।

हाँ, तो जब मैं पुत्र-जन्म का समाचार पाकर ससुराल पहुँचा तब तन्नो द्वार पर ही मिल गयी। मुझे देख वह हर्षातिरेक मे मुझसे लिपट-सी गयी। मेरा हाथ झँझोड़ती हुई बोली, "लड़का हुआ है जनाब ! मैं कहती थी न···अब मुझसे निबटने के बाद ही अन्दर जा सकेंगे···।" मैं कुछ कहूँ इससे पूर्व ही पत्नी की एक सहेली वहाँ आ गयी। हँसकर बोली, "हाँ, मिठाई तो हमें भी खिलाइए पहले। पर तन्नो, इस तरह चिरचिटा सी उनसे लिपटी क्यों जा रही हो···!"

"तो क्या हुआ···" और न जाने किस भावोन्माद मे वह मुझसे बिल्कुल सट गयी। अपने अपेक्षाकृत लंबे हाथों से उसने मुझे कस लिया और सिर एक क्षण कंधे से टिकाने के बाद उठाकर बोली, "अब बोलिये छूट कर जा सकते है आप ?"

यह सब अनायास ही हो गया और वह भी पलक झपकते। शायद आज के कुछ कहानीकार इसे थोपी हुई भावुकता कहें और इस दृश्य और कथोपकथन पर विश्वास न करें, उन्हें मैं इतना स्पष्ट कर दूँ ये पच्चीस वर्ष से अधिक पहले की बातें हैं और तब जीवन मे भावुकता बहुत थी। नये कहानीकार इस सत्य की वास्तविकता तो शायद न समझ सकें क्योंकि उन्होंने उस काल का जीवन नहीं जिया है, इसे तो हम भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। यह अलग बात है कि अब हम लोग भी उतने भावुक नहीं रहे हैं। समय और परिस्थिति के प्रभाव से इनकार कौन कर सकता है !

तन्नो के सामने सबसे बड़ी समस्या थी कि वह मुझसे कहे तो क्या कहे ? पत्नी से अवस्था मे कुछ मास अधिक होने के कारण मुझे 'भाभी' कहना चाहिए था और उसे 'लल्ला जी', पर एक अविवाहित लड़की से भाभी कहना मुझे बिल्कुल नही जँचा। मुझे याद है शुरू-शुरू मे हम लोग बिना किसी संबोधन के बातें करते रहे थे और जब एक दिन अचानक मेरे मुँह से 'भाभी' निकल गया तब वह सकोच से सिकुड़-सी गयी, "भई, भाभी-ऊबी मत कहा करो हमसे। हमसे भी लल्ला-उल्ला नहीं कहते बनेगा···"

"तो फिर आप क्या कहेंगी ?" उत्सुकता से पूछा मैंने।

"हम तो नाम लेंगे—रघुबीर बाबू या रघुबीर ही काफी है···"

"तब ठीक है, मैं भी आपको नाम से ही पुकारूँगा—स्नेहलता ?··· स्नेह ?···नहीं, सुनते-सुनते 'तन्नो' ही मुँह लग गया है। इसमें कोई बुरा तो नहीं मानतीं आप ?"

उसने कोई आपत्ति न की। धीरे मुस्करा कर स्वीकृति दे दी।

प्रसव के बाद कल्याणी दो मास तक मायके में ही रही। दूसरे-तीसरे नियमित रूप से मैं उसे देखने जाता रहा। तन्नो घर पर ही मिलती थी। कभी बच्चे को खिलाती हुई या कभी पत्नी का मन बहलाती हुई। मेरे पहुँचते ही वह छत पर जाने का उपक्रम करने लगती (उसके माता-पिता ऊपर के भाग में रहते थे)। "लो, अब तुम बातें करो अपने साहब से!" कहती हुई वह उठने लगती, पर मैं उसे बैठाये रखता। फिर बातें छिड जातीं और घंटों चलती रहतीं। मैंने यदि कोई नयी कहानी लिखी होती तो मैं उसे साथ ले जाता था और वहाँ उसे सुनाता था। वह कहानी बड़े ध्यान से सुनती थी और उसमें रम लेती थी। सुनते-सुनते वह मन ही मन कोई ग़ज़ल गुनगुनाने लगती। फिर मैं ग़ज़ल सुनाने का अनुरोध करता और वह टालना चाहती। मेरे अत्यधिक अनुरोध पर ही वह ग़ज़ल सुनाती थी, पर जब सुनाने लगती तब तन्मयता से सुनाती थी।

एक दिन मेरे बहुत कहने पर भी उसने ग़ज़ल नहीं सुनायी। मुझे उसकी यह ज़िद बुरी लगी और मैं पत्नी के पास थोड़ी देर बैठकर ही जाने को उठ पड़ा। यह देख उसका चेहरा उतर गया और द्वार के पास आकर बोली, "आप नाराज़ हो गये ?·· बात यह है कि मैं दर्द से भरी ग़ज़लें ही पसंद करती हूँ, पर उन्हें गाते समय मुझे बड़ी पीड़ा होती है। यदि अकेले में गाऊँ तो निश्चय ही रो पड़ूँ। आपके सामने अभी तक रोयी नहीं हूँ, अपने आपको किसी प्रकार सम्हाले रहती हूँ। आज मुझे डर था कि अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख पाऊँगी, इसीलिए नहीं सुनायी···आज मन बहुत अधिक है।"

"क्यों ?" न चाहकर भी मैं पूछ ही बैठा।

"बहुत ज़िद करके इस वर्ष मैंने हाईस्कूल की परीक्षा दी थी। आज उसका नतीजा आया और मैं फेल हो गयी। सातवीं के बाद से ही मेरी पढ़ाई वर्षों पहले छुड़ा दी गयी थी, अब आप ही बताइए और सब विषय तो

अपने आप पढ़ भी लेती, और पढ़े भी, पर अंग्रेज़ी की समस्या थी। फिर भी मैंने भरसक कोशिश की थी···पर शायद हर ओर निराशा ही है मेरे जीवन में। सोचा था, हाईस्कूल पास हो जाती और प्रशिक्षण प्राप्त कर लेती तो प्राइमरी स्कूल में तो नौकरी मिल ही जाती···"

घर लौटते समय रास्ते-भर, और शायद रात को भी, मैं तन्नो के बारे में ही सोचता रहा था।

दूसरे दिन मैंने कल्याणी से कहा, "तुम्हारी क्या राय है? अगर हम लोग तन्नो को इस वर्ष अपने साथ रख लें तो तुम्हें भी बच्चे के साथ कुछ सहारा हो जायगा और मैं उसे अंग्रेज़ी पढ़ा दिया करूँगा तो वह हाईस्कूल का इम्तहान भी दे सकती है।"

"मैं क्या जाऊँ···" उसने जिस रूखेपन से उत्तर दिया, उससे मैं चौंक पड़ा, "आप तन्नो को ले जाइये और अपने साथ रख लीजिए। चाहे पढ़ाइए-लिखाइए···चाहे जो कीजिए। मैं यहीं रह जाऊँगी···" कहते-कहते वह रुआँसी हो गयी।

मैं चुप रहा। समझ में नहीं आ रहा था क्या कहूँ। मेरी चुप्पी को शायद उसने अपराध की स्वीकृति समझा। समझाने के स्वर में बोली, "आपके दिल में पाप है, यह मैं नहीं कहती, पर यह भी तो सोचिए लोग क्या कुछ नहीं कह सकते हैं। और अभी ही क्या नहीं कहा जाता···वे तो यह नहीं जानते कि आप लिखने-पढ़ने की बातें करते हैं।"

'लोग! लोग!! लोग!!! लोगों की वजह से मैं कोई उचित काम करने से डरूँ?' मैंने सोचा—'बकने दो भीड़ को···मैं अगर किसी को नेक समझता हूँ तो अवश्य उसकी मदद करूँगा···' मेरा मन भीतर से उफनने लगा। चाहा कि कल्याणी को भी बहुत-कुछ सुना डालूँ। पर किसी प्रकार का विवाद बढ़ाना वहाँ ठीक न रहेगा, सोचकर मैं घर वापस चला आया।

मुझे बात लग गयी थी और मैंने सोच रखा था कि अवसर मिलने पर अपने घर तन्नो को बुलाकर बात छेड़ूँगा। कल्याणी भी मेरे साथ आकर रहने लगी थी और छोटे बच्चे के कारण परेशान होकर कभी मुझ पर

कभी बच्चे पर झल्लाती रहती थी। गृहस्थी और नौकरी के झंझटों के कारण मुझे भी समय नहीं मिल पाता था और कुछ नया लिख पाने में अपने आपको असमर्थ पा रहा था। मन में हर समय एक अवसाद-सा छाया रहता।

ऐसे ही समय वह विशेष घटना घटी।

हुआ यह कि मैंने एक कहानी लिखी थी और वह एक प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित भी हुई। पत्रिका कहीं मेरे मौसा जी के हाथ लग गयी। उन्होंने उसे पढ़ा तो यह समझा कि वह कहानी मैंने उनके ऊपर लिखी है। वे उसकी नकल कर-करके मेरे सब संबंधियों को भेजने लगे। साथ में लिखते—'यह कहानी मेरे ऊपर लिखी गयी है, पर मैंने सुना है आपके ऊपर भी एक कहानी लिखी जा रही है···' या इसी प्रकार का कुछ। मेरे विरुद्ध उनका प्रचार जब पूरा हो गया तब कहीं मुझे पता चल पाया। औरतों-औरतों में होती हुई बातें कल्याणी तक पहुँचायी गयीं और उसने एक दिन क्रोध में मेरा सब-कुछ चूल्हे के हवाले कर दिया।

आज भी सोचता हूँ और उस दृश्य की कल्पना करता हूँ तो हाथ-पैर काँपने लगते हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन स्कूल से लौटने पर जब कल्याणी ने मुझे बताया कि उसने मेरी सारी कापियाँ जला दीं तब मेरा मस्तिष्क एक क्षण को सुन्न हो गया। इतनी हिम्मत!! मन हुआ, आगे बढ़कर गला घोंट दूँ या उसके ऊपर भी मिट्टी का तेल छिड़ककर दियासलाई दिखा दूँ! "लानत है ऐसे बी० ए० पास कर लेने पर···" मैं पूरे ज़ोर से चीखा, "कि गोबर ज्यों-का-त्यों भरा रहे दिमाग में। पैसा था बाप के पास, दो-दो मास्टर रख दिये घर पर पढ़ाने को और उन्होंने जो कुछ रटा दिया वही उगल दिया जाकर इम्तहान की कापियों में और नाम हो गया 'ग्रेजुएट' है। मरते बेचारे वे लोग हैं जिनके पास प्रतिभा है, पर साधन नहीं। तन्नो···"

तन्नो से मिलने की मेरे मन में एकदम हूक-सी उठी। इसका कारण यह भी था कि मेरे मन में एकाएक इस समाचार से जो बहुत कुछ उमड़ने-घुमड़ने लगा था, वह यदि बाहर न निकालता तो न जाने क्या होता···

शायद पागल ही हो जाता।

आज चाहूँ तो इन सबको अतिशयोक्ति मान सकता हूँ और अपनी भावुकता पर हँस भी सकता हूँ (और लोग तो हँसेंगे ही), पर उस समय मुझे कुछ न सूझा। कल्याणी की ओर घृणा से देखकर मैं एक झटके में घर से बाहर आ गया और रिक्शा खोजता सड़क पर चलने लगा।

संयोग केवल कहानियों में ही नहीं होते। अपने घर से थोडी दूर पहुँचे ही मुझे तन्नो मिल गयी। रिक्शा रोककर मैंने उसे रोका और अपने साथ आने को कहा। वह नगर में ही अपनी मौसी के घर जा रही थी। मैंने उससे कहा, "कल्याणी की तबियत अचानक खराब हो गयी है और प्रदीप रो रहा है– मैं आपको ही बुलाने जा रहा था···" मुझे डर था, कहीं वह इनकार न कर दे, इसीलिए प्रदीप का बहाना किया।

रास्ते में ही मैंने उसे सब बातें बता दी। सुनकर वह चुप रही। मुझे उसकी चुप्पी कुछ रहस्यमय लगी, पर मैं अपनी धुन में कहता ही रहा, "मेरी समझ में नहीं आ रहा, मैं क्या करूँ ? माँ-बाप तो ब्याह रचा कर अल[illegible] हो जाते हैं, यह नहीं देखते कि पति-पत्नी के विचारों का साम्य है [illegible] नहीं।···जीवन बरबाद हो, एक-दूसरे से घृणा करें, फिर भी उस गल[illegible] को सुधार न सकें, यही हमारा आदर्श है। · मैंने तो इस गलती [illegible] सुधारने का फैसला कर लिया है अब · "

घर में घुसते ही तन्नो ने रोते प्रदीप को सम्हाला और उसके [illegible] बिस्तर पर औंधी पडी रोती हुई कल्याणी को हाथ पकडकर उठा[illegible] फिर उसका मुँह-हाथ धुलाया और चाय बनाकर पिलायी। वह ए[illegible] बाद दूसरे काम करती जा रही थी और मैं मौन ठगा-सा देखता रहा था। प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई बात शुरू हो और मैं बोलना करूँ। वातावरण में अजीब-सी उदासी छायी हुई थी।

पर जब सब काम से निबटकर तन्नो मेरे पास आकर बोली, "स[illegible] गया आपका घर। अब मुझे पहुँचा आइए।" तब मैं ,उसकी ओर [illegible] सूचक दृष्टि से देखता रह गया।

"आज यहीं रह जाओ न, सुबह चली जाना।" मेरी समझ

जाना, इसके अतिरिक्त मैं क्या कहूँ।

उसने एक पल को मेरी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखा फिर धीरे से बोली, "जाना ही ठीक है। अगर नहीं चल सकते पहुँचाने तो अकेली ही चली जाऊँगी...।"

'तो चली न जाना!' कुछ झुँझलाकर मैंने मन ही मन कहा, प्रकट में बोला, "जैसी आपकी इच्छा।'

रात-भर मैं बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठा रहा और नींद आने पर शायद वहीं बैठे-बैठे सामने पड़ी मेज पर सिर रखकर सो गया। सोचता रहा न जाने क्या-क्या! न तो बड़भागी मुझे मनाने आयी और न मैंने उसे मनाना अपना कर्तव्य समझा। निश्चय कर लिया, तन्नो चली गयी तो क्या हुआ, बस कोई दूसरा मार्ग खोजूँगा।

अब सोचता हूँ तो हृदय तन्नो के प्रति आदर से भर उठता है। उसने मेरे लिए, मेरे बच्चे के लिए, मेरे परिवार के लिए अपना बलिदान कर दिया। लोगों ने तरह-तरह की बातें उड़ायी, किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। सुबह सिटी स्टेशन के पास रेल से जो लड़की कटी पायी गयी, वह तन्नो ही थी। समाचार सुनकर मैं भी दौड़ा गया था और एक बार मन हुआ कि मैं भी इसी प्रकार रेल के नीचे आकर अपनी जान दे दूँ।

मुझे याद है, तन्नो ने एक बार कहा था, 'मेरी भी कहानी लिखिए न! लिखेंगे?' मृत्यु के बाद उसका यह प्रश्न कई बार मेरे मन में उभरा था, पर मैं लिख न सका। क्यों? शायद इसलिए कि उसके साथ मेरी भी कहानी जुड़ी हुई थी। मौसा जी मेरी एक कहानी पढ़कर नाराज हो गये थे क्योंकि उसमें उन्हें अपनी तस्वीर नजर आ गयी थी। पता नहीं क्यों लोग बाह्य चित्र, जैसा 'फोटो' में होता है, देखकर तो प्रसन्न हो जाते हैं, किन्तु आन्तरिक चित्रण, जैसा कहानी में होता है, देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। मैं नहीं कहता कि मैं इसका अपवाद हूँ। हो सकता है, मैं भी अपना आन्तरिक चित्रण देखकर भयभीत होने लगूँ।

मेरी भाँति ही, सुना है कहानी भी इस बीच कई मंजिलों से होकर गुजर चुकी है। मैं पहले ही कह चुका हूँ, उस घटना विशेष के बाद मैंने

कहानी लिखना बिल्कुल त्याग दिया। बाद में, कल्याणी ने अपनी इन्हें
महसूस कर ली और क्षमा भी माँग ली, तब भी मेरा उचटा मन रह
लिखने में न लगा।

इतना सब भी कैसे लिख गया, आश्चर्य है। लगता है किसी ने
पकड़कर लिखवा दिया है। कौन हो सकता है वह? कल्याणी?
तन्नो? लेकिन तन्नो इतने दिनों से क्यों न लिखवा सकी? प्रदीप
प्रदीप हो सकता है। प्रदीप ने 'इंजीनियरिंग' पास की है; एक लड़
पसंद किया है जिससे विवाह करने की मैंने सम्मति दे दी है। हो
प्रदीप के मनचाहे विवाह की प्रतीक्षा से प्रेरित होकर ही मैं यह
गया हूँ। कभी मेरा भी विवाह हुआ था'''छब्बीस-सत्ताईस साल
कहानी आज सजीव हो उठी है।

तपस्या, रुपया और भाषा

जब मैं रिक्शे से उतरा तो भैया खिड़की के सामने बैठे 'शेव' कर रहे थे। मैंने कमरे में सामान रखकर इधर-उधर देखा और पूछा, "भाभी कहाँ है?"

"बस मायके गयी हुई है"—उन्होंने कहा और मौन हो गये।

मैं सोच रहा था, वह मेरे अचानक आ जाने के बारे में कुछ पूछेंगे या फेल हो जाने के बारे में कहेंगे, पर वे पूर्ववत् अपने काम में लगे रहे और उसके बाद नहाकर, आफिस जाने की तैयारी करने लगे। मैं निश्चय ही नहीं कर पा रहा था कि मुझे स्वयं क्या कहना या करना चाहिए कि वह चलते-चलते बोले, "यहाँ पास में ही घंटाघर पर जो 'घनश्याम भोजनालय' है, वहाँ भोजन कर लेना। पन्द्रह पैसे फुलका देता है, सब्जी-दाल साथ में। पैसे हैं या दूँ।"

और मेरे "हैं" कहने पर वे साइकिल उठाकर बाहर निकल गये।

अभी पिछले महीने ही मैं यहाँ १५-२० दिन रहकर गया था, तब भाभी भी थीं। मैं 'मैकेनिकल इंजीनियरिंग' के तृतीय वर्ष की परीक्षा देकर आया था और कुछ दिनों की छुट्टी के बाद मुझे दुबारा 'प्रैक्टीकल ट्रेनिंग' के लिए कालेज जाना था। तब भैया मुझसे कितनी बातें करते थे। शाम को भाभी भी होती थीं साथ में, और हम लोग खाने के बाद पास के 'कम्पनी पार्क' में काफी देर बैठे रहते। आफिस से लौटते समय वे प्रायः रोज ही संतरे आदि ले आते थे और हम लोग पार्क में बैठकर बातचीत के बीच उनका स्वाद लेते रहते। तब मान का बटू भी मुझसे कातो [illegible]

गया था और मेरे इशारा करते ही वह माँ की गोद छोड़ देता था। भाभी कहती, "चाचा से इतना प्यार बड़ा लिया है, चाची आयेगी तो मार लगायेगी।"

मैं तो चुप ही रहता पर भैया कहते—"चाची कोई तुम्हारी तरह थोड़ी होगी। इंजीनियर की बीबी कोई तुम्हारी जैसी गँवार आयेगी?"

भाभी तुनक जाती तो भैया खिलखिलाकर हँस पड़ते, "लेकिन पसद तो तुम्ही करोगी महारानी! अरे भई, अपनी जैसी ही कर लेना, बस।"

वातावरण पुन. हल्का हो जाता और भाभी कहती, इस बार कुछ जोश मे—"और क्या···करेंगे ही। लेकिन लल्ला जी, तुम 'इनकी' तरह सर्विस के बाद तुरंत ब्याह मत कर लेना। कम से कम दो-तीन वर्ष अकेले रहना और पैसे जमा करना। फिर करना ठाठ से शादी। ऐसा भी क्या, शादी करके बैठ गये और बीबी-बच्चो को साधारण कपड़ो तक के लिए तरसायें।"

भैया कहते, "हाँ अनिल, साल-भर बाद नौकरी लगते ही पहले अपनी भाभी के लिए सदूक भरके कपड़े और दो-चार ज़ेवर जरूर बनवा देना···।"

भाभी फिर तुनक पड़ती, "इसमे क्या तुम्हारी कोई सिफारिश है? गले की एक चेन और कानो के झुमके तो मैं पहली तनखाह मे से ही बनवाऊँगी।"

पर कालेज पहुँचने पर मुझे पता चला, मैं इस वर्ष फेल हो गया हूँ। लज्जा और क्षोभ के मारे मैं भैया को सूचनार्थ पत्र तक न लिख सका। अत मे प्रश्नचिह्न के रूप मे स्वय भैया का पत्र पहुँचा, इतना ही नही, उनके लिखित अनुरोध पर उनके एक वहाँ के मित्र भी मुझसे मिलने हॉस्टल पहुँचे और पत्र न डालने का कारण पूछा, तो मैंने पत्र लिख ही डाला। लेकिन लिखते समय भी कितनी बार हाथ काँपे और कितनी बार काटा-पीटा, बताना कठिन है। उसके बाद जो कुछ लिखा गया वह एक सामान्य पत्र न होकर दुख और वेदना मे डूबे हुए कुछ विचार थे—"मेरी यह

[illegible] और कह सकता है, पर इतने बाद [illegible] [illegible] ही [illegible] न था,
[illegible] मानता है। [illegible] [illegible] [illegible] करने को कुछ विशेष नहीं
है। आप इस पत्र का किसी [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]
पर [illegible] है, [illegible] अवसर [illegible] ? आप जानते हैं इण्टर में मेरी प्रथम
श्रेणी आई थी (हाईस्कूल में भी) और यदि अंग्रेज़ी में कुछ कम न होते
तो कोई न कोई 'पोज़ीशन' भी आती। अंग्रेज़ी मेरी आरम्भ से ही कमज़ोर
रही है और इण्टर के बाद यहाँ आते ही अन्य सभी विषयों का माध्यम भी
अंग्रेज़ी ही हो गया। इन विषयों को अंग्रेज़ी में समझने और अध्ययन करने
का यथोचित प्रयत्न किया पर परीक्षा में तो अंग्रेज़ी में ही 'रिप्रोड्यूस' भी
करना होता है। शायद इसी में सभी असफलता निहित है। पहले वर्ष तो,
क्योंकि कोर्स आसान था, मैं पास हो ही गया परन्तु दूसरे वर्ष न चाहने
पर 'कम्पार्टमेंट' आई। 'कम्पार्टमेंट' परीक्षा देते ही अगस्त निकल गया
और अगले वर्ष की पढ़ाई में पिछड़ गया। पर शुरू के दो महीने का काम
पूरा किया। फिर नव वर्ष की पढ़ाई शुरू की। पर शायद विदेशी भाषा
के माध्यम के कारण मेरी गति विशेष तीव्र न हो पाई और मैं इस वर्ष
असफल हो गया....।"

भैया का तुरत उत्तर पहुँचा था—"तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ लिया है।
उपदेश न समझना, पर इतना तो कहूँगा ही कि बिना घबड़ाये, हताश
हुए पुनः प्रयत्न करो। यदि मेरे वश की बात होती तो मैं तुरन्त ही सभी
विषयों की पढ़ाई का माध्यम अपनी भाषा कर देता। 'प्रैक्टीकल ट्रेनिंग'
तो अब तुम्हारी होगी नहीं, फिर क्या प्रोग्राम है वहाँ रुककर ?"

और पत्र के उत्तर में अपनी मन स्थिति सामान्य होते ही मैं वापस आ
गया हूँ। पहले माताजी-पिताजी के पास जाने को भी सोचा था, पर
लगा वहाँ अधिक दिन नहीं रह पाऊँगा। दो-चार दिन को बाद में देखा
जायेगा।

लेकिन भैया की सूरत इतने दिनों में ही कैसी हो गई है ? लगता है,
इम्तहान में फेल मैं नहीं, स्वयं वे हुए हैं। पहले के उत्साह का स्थान अब

एक विचित्र तटस्थता ने घेर लिया है। भाभी भी यहाँ नहीं है, नहीं तो उन्हीं से पूछता—"क्या हो गया है भैया को ?"

लेकिन मैं धोखे में था। एक सप्ताह बाद भाभी अपने मायके से लौट आयी, पर वे भी जब अपरिचित-सी लग रही थीं। भैया के बारे में उनसे क्या पूछता, जब स्वयं उनके बारे में ही पूछने का साहस न हुआ। भैया आफिस चले जाते तो मैं जान-बूझकर बैठक से अन्दर के कमरे में चला जाता और बटू को गोद में उठा लेता, "क्यों बे, नानी के घर क्या-क्या माल मिले ?"

"रहने दो लल्ला जी। अभी दोपहरी में कुछ देर सुला दूँ, तो अच्छा है।" और वे बंटू को मुझसे लेकर अपनी चारपाई पर लिटाकर थपकी देने लगती। मैं जड़बुद्धि-सा कमरे के सूनेपन को महसूस करते हुए दूसरी खाट पर बैठ जाता। सोचता, बटू को सुलाने के बाद भाभी अवश्य मुझसे बातें करेंगी, पर वे कोई पत्रिका लेकर लेट जाती।

रात को मैं खुली छत पर सोता था अतः नहीं जान पाता कि भैया-भाभी में क्या बातें होती हैं, पर दिन की हालत देखकर ही लगने लगा था कि घर में परस्पर तनाव की स्थिति विद्यमान है। कारण जानने को मैं बेचैन था, पर कोई सूत्र हाथ न लगता था। और इस कारण, जब मैं सोचता कि शायद मेरा अनुत्तीर्ण होना ही एकमात्र कारण हो सकता है, तो मन और भी बेचैन हो जाता। स्वयं को अपराधी महसूस करते हुए मेरा मन होता कि मैं भैया-भाभी के चरणों पर सर रखकर कहूँ, 'मुझे जो
: दें, पर स्वय को क्यों सजा दे रहे है ? आपके मेहनत से कमाये
के बदले में बचाये दो हजार रुपयो पर मैंने इस वर्ष पानी
यही न ? यदि आपके लिए अब देना सभव न हो तो मैं
किसी से रुपया उधार लेकर आगे की पढाई पूरी करूँगा,
मे अब नही देख सकता···' पर मैं जानता था, भैया
ो से और दुख पहुँचेगा। वे शायद कहें, 'अनिल, जब
, तभी मैंने सोच लिया था कि यह मेरे लिए तपस्या के
स्वयं भी इजीनियर बनने की कितनी इच्छा थी,

पर पिताजी ने तपस्या नहीं करनी चाही थी और मेरी इच्छा पूरी न हो सकी। अब मैंने जब तुम्हारा भार ले लिया है, तो मुझे कर्तव्य-च्युत मत होने दो…।' भाभी भी शायद कहे, 'कैसी बातें करते हो लल्ला जी ? तुम अपने नाम से उधार लोगे तो क्या तुम्हारे भैया नहीं ले सकते ? दोनों में क्या कोई फर्क है ?' सोचते-सोचते मेरा मन आर्द्र हो जाता और नेत्र सजल हो जाते।

एक दिन भाभी के घर से कार्ड आया। उस समय वे सो रही थीं। उत्सुकतावश मैंने पढ़ लिया। पता चला, उनका भाई हाईस्कूल में फेल हो गया है और अब वह यहाँ रहकर पढ़ना चाहता है।

दूसरे दिन रविवार था और भैया घर पर ही थे। सुबह को नाश्ते से निबटकर हम दोनों शतरंज लेकर बैठ गये। काफी दिनों बाद साथ खेल रहे थे, अतः आनन्द आने लगा था कि भाभी आईं और बटू को बैठक में पटक गईं, "इसे भी जरा रखो, अगर खाना खाना है।"

"यही बात है तो मत बनाओ खाना। लेकिन अब तुम्हारा भाई आकर रहेगा, तो उसे भी क्या इसी तरह कह सकोगी ?" भैया मुस्कराये।

भाभी खिसिया गईं, "क्यों कहूँगी उससे ? वह आयेगा भी तो क्या तुम्हारे ऊपर आकर रहेगा ? अपने बाप से पैसे लायेगा और खर्च करेगा…"

भैया को शायद लगा, व्यंग्य मेरे ऊपर किया गया है। उन्हें सहन न हुआ। शतरंज के मोहरों को एक झटके से गिराकर बोले, "तुम भी तो बड़े बाप की बेटी हो ? फिर क्यों मेरे ऊपर रह रही हो ? वहीं से लाओ और खर्च करो।"

"और क्या तुम्हारे ऊपर ही रह रही हूँ—मुँह धो रहो" भाभी की आवाज भर्रा गई थी—"मेरे लिए कभी चार पैसे की चीज लाई होती, तो जानती।…मुझसे उस दिन बीस रुपये खो गये तो आसमान सर पर उठा लिया और उधर दो हजार रुपयों का भी गम नहीं। फिर भी मैं कुछ कहती नहीं हूँ और आप हैं कि ताने पर ताने…" भाभी अब रोने लगी थीं।

मुझे अपनी स्थिति नितांत दयनीय और असमर्थता की लगी। समस्त

मुझसे दोस्ती कर लो, तो सारी बातें समझा दूँगी तुम्हें !"

और हमारी दोस्ती हो गई थी हाथ मिला कर। मैं उसे आप की बजाय 'तुम' कहने लगा था और वह तो खैर नाम लेती ही थी। वह करीब हफ्ते-भर रही हमारे घर और इस बीच खूब सारी बातें हुईं। किसी नारी सौंदर्य को काफी निकट से देखने का वह पहला अवसर था मेरा और इसके फलस्वरूप मेरी हालत अजीब-अजीब-सी हो गई थी। रात को नींद नहीं आती थी। आती भी, तो सपनों में मुझे वह परेशान करती रहती। मेरी मनःस्थिति इस प्रकार विचित्र हो गई थी कि रोज अकेले में सोचा करता, आज उससे यह कहूँगा, यह पूछूँगा, लेकिन जब उसके सामने जाता, तो बोलती बन्द-सी हो जाती, जो कुछ वह बोलती, वही सुनता रहता।

उन दिनों बड़ी ही अल्हड़ता थी उसमें। नाक-नक्श उसके तीखे थे ही, गोरा रंग और भरी-पूरी देह, नशे के लिए और क्या चाहिए ? हाँ, वह एक नशा ही तो था कि मैं उसके एक स्पर्श की खातिर दिन-रात बेचैन रहने लगा। और एक दिन मौका देख, मैंने पीछे से जाकर उसे बाँहों में बाँध लिया। असावधानी में उसकी साड़ी भी सर से नीचे आ गई। पर नंगी, सिर्फ 'ब्रा' की डोरी में कसी गोरी-चिकनी पीठ देखकर मैं एका-एक सकपका गया था। अपराधी भाव से हाथों को अलग करके एक ओर खड़ा हो गया। वह शायद ब्लाउज चेंज कर रही थी।

"पागल हो गए थे क्या ?" गुस्से में भी मुस्कराते हुए वह मेरी ओर घूम कर खड़ी हो गई—"इस सबसे तुम्हें अभी क्या मिलेगा ? देह का आनन्द तो उसी को मिल सकता है, जिसे मन 'उस' रूप में स्वीकार कर सकता हो। मेरी नजर में तो तुम अभी बच्चे हो—एक अच्छे छोटे भाई की तरह।"

मेरा मन रोने को आया। मैंने कहा, "अगर भाई ही समझती थी, तो तुमने मुझसे उस तरह की स्त्री-पुरुष संबंधों की बातें क्यों कीं ? उन्हीं से तो मेरा मन खराब हो गया।"

"अच्छा, कोई बात नहीं।" वह ब्लाउज पहनते हुए तथा साड़ी ठीक से बाँधते हुए बोली, "मन हमने खराब किया है बातों से, तो बातों से ही ठीक भी कर देंगे। लेकिन अब रोते क्यों हो ? अरे अगर रोमान्स ही करना

ऐसी कोई कहानी कहने के लिए किसी भी विशेष देश यहीं आवश्यक नहीं है। किन्तु सुन्दर मुलाकात का जिक्र यहाँ अनिवार्य-सा बन रहा है। अब मैं उसका नाम तो नहीं बताऊँगा। कुछ दिन पहले तो यहाँ उसी पर मुझे कहानी कहने का विचार हो भी रहा था, क्योंकि उसमें [illegible] है। [illegible] कहानी, भावभीनी भी, 'वह' के अन्तर्गत लिख रहा हूँ और अलग [illegible] है उसकी कहानी [illegible]। लेकिन मैं किसी तरह का सिद्ध करने के लिए 'उसकी' कहानी 'वह' के अन्तर्गत नहीं कह रहा। मैं आखिरी उसका नाम तो आप जाहिर न होने देने की वजह से ही इस [illegible] को यहाँ अपना रहा हूँ। तो ना उससे मेरी पहली मुलाकात ना शायद कभी बयान न हुई होती और उसका जिक्र यहाँ भी नहीं; सिवा इसके कि हम दोनों एक-दूसरे का नाम जान गए थे। लेकिन वो मुलाकात [illegible] के हिसाब से दूसरी है और खूब अच्छी तरह याद है तथा जिसने मेरे मन-मस्तिष्क पर काफी असर भी डाला था, वह थी सन् '५७ में [illegible] की शादी पर की मुलाकात। मेरी उम्र उस समय सन् '४० की पैदाइश के हिसाब से १७ वर्ष की हो गई थी तथा बी० एस-सी० के पहले साल की परीक्षा देकर आया था। और उसने मुझे बताया था कि वह उम्र में मुझसे एक साल के लगभग बड़ी है तथा इस वर्ष बी० ए० (फाइनल) की परीक्षा में बैठी है।

"तब आप आगे एम० ए० किस विषय में करेंगी ?" उत्सुकतावश मैंने पूछा था।

"है एक विषय, जिसे विषय ही कहते हैं।" वह शरारत से मुसकराई थी—"अरे मियाँ, मेरी शादी तय हो चुकी है, जाड़ों तक होजाएगी, अतः पढ़ाई बन्द।"

मैंने विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखा था। लोग कहते हैं, लड़कियाँ बड़ी शर्मीली गुड़िया जैसी होती है और यह मुझसे, एक लड़के से, कैसी बातें कर रही है। हिम्मत करके मैंने पूछा था, "आप शादी कर ही क्यों रही है—इतनी जल्दी ?"

"तुम भी बच्चे हो। अरे, लड़की की यही तो उम्र होती है—और, अभी जवानी में नहीं करूँगी, तो क्या बुढ़ापे में राम रचाऊँगी ? अच्छा

में तुम्हारे हालचाल पूछ रही थी और आज तुम मिल भी गए। क्यों बुआ जी, पूछ रही थीं न ?" उसने पुष्टि कराने के लिए चाचीजी की ओर देखा था।

"हाँ राजेश, कल ही यह तुम्हारे बारे में पूछ रही थी, कह रही थी कि यदि राजेश का पता मालूम हो, तो उसे चिट्ठी लिख दें—काम यह है कि दूसरे दूल्हा के हैड आफिस में किसी से मिल-मिलाकर उनका तबादला रुकवाना है। भाभी बेचारी बड़ी परेशान है। यहाँ बरेली में ही थी, तो आसानी थी, जब चाहे बुलवा लेती थी। अब कहती हैं, बिटिया इतनी दूर कानपुर चली जाएगी, तो महीनों नहीं आ पाएगी। बेचारी रोने लगती है..."

सारी बात समझकर मैंने छेड़ा, "तो मतलब के लिए हमें याद किया जा रहा था और उस पर एहसान जता रही हैं श्रीमती जी कि हम तुम्हें याद कर रहे थे। खैर, चाची जी, आपका हुक्म है, इसलिए इस काम की पूरी कोशिश करूँगा। वरना अगर सिर्फ इन्होंने कहा होता, तब तो हरगिज़ न करता।"

उस शाम हम पिक्चर भी गए थे। फिल्म में क्या था, यह तो खास याद नहीं, लेकिन नाम याद है एक फूल चार काँटे। यह भी याद है कि नाम को लेकर मैंने रास्ते में कहा था, "एक फूल तुम भी तो हो और एक काँटा मैं। हमारी भी पिक्चर बन सकती है—एक फूल एक काँटा। तुम आखिर चुप क्यों हो, अरुणा ?" (माफ कीजिए, अरुणा नाम भी असली नहीं है।)

"तो बात क्या करूँ ?" वह फीकी हँसी हँसी, "तुम ही शुरू करो न कोई बात।"

मैं क्या बात करता ? पहले तो वही बातों में से बातें निकालती रहती थी और मैं बस सुनता था। मैं थोड़ी देर चुप रहा, फिर पूछा, "लगता है, विवाह के बाद तुम्हारे स्वभाव में काफी परिवर्तन आ गया है।"

"क्या मुझे देखकर तुम्हें ऐसा लगता है कि मुझमें परिवर्तन आ गया है ?" उसने मुसकराने की फिर कोशिश की।

"अब यही देखो न कि तुम एक बच्चे की माँ बन गई हो—पहले से मोटी हो गई हो। लेकिन मैं बाह्य परिवर्तनों की नहीं, अन्दरूनी तब्दीलियों की बात कर रहा था।"

चाहो, सब बहुतेरी लड़कियाँ है दुनिया में—मैं तुम्हें सारी तस्वीरें बता दूँगी।" और उसने मेरा दिल बहलाने की काफी कोशिश की थी। शादी में आई कुछ अन्य लड़कियों से मेरा परिचय करा दिया था। उनमें से एक लड़की तो मुझे 'प्रेमपत्र' तक लिख बैठी। मैंने वह पत्र पाकर उसी के हवाले कर दिया, तो उसने उसका जवाब भी लिखवा दिया। बाद मे भी उस लड़की के कई साल तक पत्र आते गए, जब तक कि उसकी शादी न हो गई।

उससे मेरी तीसरी मुलाकात का अवसर स्वय उसकी शादी मे आया मैंने अभी तक यह नही बताया कि वह मेरी चाची की भतीजी थी, अर्थ मेरी दूर की एक कजिन। वह सरला दीदी की शादी मे आई थी। और अपने माता-पिता की ओर से 'भात' मे काफी सामान दे गयी थी। अत मेरी माताजी ने भी बदला चुकाने के लिए चाची जी के साथ अपने प्रतिनिधि के रूप मे मुझे भेज दिया था। लेकिन शादी उसकी अपनी थी और तरह-तरह के रस्म-रिवाजो की व्यस्तता के कारण उसे फुरसत बिलुल नही थी। भीड मे जब भी वह मुझे देखती, या अपनी ओर देखते पाती, तो हौले से मुस्करा देती। मैं इतने से ही अपने को धन्य मानकर प्रसन्न हो जाता तथा बारातियो के प्रबध मे दुगुने जोश से लग जाता।

चौथी मुलाकात फिर दिलचस्प रही। तब उसकी शादी हुए दो साल गुजर चुके थे तथा छह मास का एक पुत्र गोद मे था। मै उन दिनो एम० एस-सी० मे लखनऊ मे पढता था। छुट्टियो में घर जाते हुए मैंने रास्ते मे चाची के पास बरेली ड्राप किया था। वह भी उनके पास कुछ दिन पहले की आई हुई थी, क्योकि चाचीजी ने उसे ससुराल से बुलाया था मैंने उसे जब घर मे घुमते ही, संयोग ही समझिये, बरामदे मे खाट पर बैठे देखा, तो मन एक अनजानी खुशी से भर गया। और नमस्ते आदि के और मैं वही उसकी खाट के पास कुर्सी खीच कर जम गया—"कहो प्रेम मे तो हो ?" (क्षमा कीजिए, 'प्रेम' नाम यहाँ असली नही है।)

"हूँ ! ठीक ही हूँ तुम सुनाओ लखनऊ के हालचाल। कल मैं बुआ

नाश्ता मेरे साथ करने के बाद और नहा-धोकर तथा लंच-बॉक्स लेकर उसके पति साढ़े नौ बजते-बजते आफिस चले गए और तब मैंने सोचा, अब दोपहर में कुछ बातें हो सकेंगी। इसी समय रसोई का काम निबटा कर वह मेरे पास आई तथा बोली, "तुम्हारे लिए पानी गर्म होने रख दिया है, तुम नहा लो, फिर मैं भी नहाऊँगी।"

"मैं तो जाड़ों में सड़े के सड़े नहाता हूँ। आखिर वहाँ रोज मेरे लिए कौन पानी गर्म करने वाला बैठा (बैठी) है।"

"लेकिन आज तो नहा ही लो, मैंने पानी काफी रख दिया है। आज बेबी को भी नहीं नहलाया है।" (इस बीच उसको एक लड़की और हो चुकी थी और वह इस समय पास ही छोटी खाट पर सो रही थी। बड़ा बच्चा, जिसका नाम उसने आलोक रख दिया था अब तीन साल का था और रिक्शे पर सवार होकर नर्सरी स्कूल जाने लगा था, वह आठ बजे चला जाता तथा दो बजे दोपहर बाद आता था।)

"तो पहले तुम नहा लो, तब तक शेव करता हूँ, फिर नहा भी लूँगा —तुम्हारे कहने पर।"

"पर मुझ पर यह कोई एहसान नहीं होगा।" वह थोड़ा-सा मुसकराई थी तथा कपड़े उठाकर गुसलखाने की ओर चली गई थी।

बाद में मैं जब नहा कर कमरे में आया [illegible] खड़ी-खड़ी तौलिये से बालों को सुखा रही थी। [illegible] यह प्राकृतिक रूप बड़ा ही सुहावना लगा और मैं उसके [illegible]

"आज इरादा क्या है?" मैंने उसके कंधों पर हाथ [illegible] खड़े होकर पूछा। उसने कुछ गौर, कुछ [illegible] मेरे चेहरे तक आ रही थी।

"इरादा किसी को खूब छकाने का है।" वह [illegible] घूम गई थी—"अच्छा, देखो, अब [illegible] मैं क्या करता। मुझे तो इस समय यह [illegible] थी। मन हो रहा था, उन बाँहों में कस लूँ और [illegible] रहा हूँ। लेकिन मन को नियंत्रण में रख कर मैं उसके [illegible] प्रतीक्षा करने लगा। उसी बीच कोई [illegible]

"ऐसी तो कोई बात नहीं और फिर मोटी हो जाने में हर्ज भी क्या है। इससे पता चलता है न कि मैं कितने सुख-चैन में हूँ !"

"लेकिन ज्यादा गोल-मटोल होना कोई अच्छी बात तो नहीं, इससे सौंदर्य एवं स्वास्थ्य पर भी असर पड़ सकता है।" मैंने बातों को दूसरा मोड़ देना चाहा।

सिनेमा हाल में अब बातें जारी रखने का तो प्रश्न ही नहीं था, लेकिन मैंने कुछ ऐसी हरकतें शुरू कर दीं, जिनका सामान्य तौर पर उसे विरोध करना चाहिए था, पर उसने नहीं किया। मेरा साहस या दुस्साहस इतने काफी बढ़ गया था। और उसे पूरी पिक्चर पास खींच कर बैठाए रखा था। उसके हाथों को अपने हाथ में लेकर कई बार, अँधेरा गहरा होने पर चूमा भी था। इंटरवैल में उसने कहा कि उसे काफी गर्मी-सी और घुटन महसूस हो रही है, तो मैंने जाड़े के मौसम में भी उसे कोकाकोला पिलाया था।

लौटते समय रिक्शे में बैठे हुए हम लोगों में फिर कोई बातचीत छिड़ सकी। बस, वह मेरे बराबर से सटी हुई, गुमसुम बैठी रही। घर पहुँचने पर जब वह अपने बच्चे के पास बिस्तर में घुस गई और खाने तक को मना कर दिया, तो मैं भी चुपचाप थोड़ा-सा खा-पीकर दूसरे कमरे में सोने चला गया, लेकिन आपको बताऊँ मुझे नींद बहुत देर में आई थी।

फिर पाँचवीं मुलाकात मेरी उससे लखनऊ में हुई। एम० एस-सी० करने के बाद मुझे बरेली में ही एक केंद्रीय संस्थान में नौकरी मिल गई थी। उसकी ससुराल भी तो बरेली में ही थी। लेकिन बरेली जाने पर मुझे पता चला कि उसके पति का ट्रांसफर इस बीच लखनऊ हो गया है। खैर, कुछ दिन बीत गए और एक आवश्यक काम से लखनऊ जाना हुआ तथा चाची जी से पता लेकर मैं जानबूझ कर उसी के यहाँ ठहरने गया लेकिन पहुँच कर मुझे लगा, उससे ज्यादा प्रसन्नता तो उसके पति को हुई है। इस प्रसन्नता का कारण भी मुझे बाद में पता लगा था और वह यह था कि वह मेरे बारे में चाची जी व अन्य रिश्तेदारों से सुन-सुनाकर काफी प्रवाहित हो गए थे और अब अपनी बहन के लिए प्रपोज करना चाहते थे।

"अच्छा, उठकर बैठो, तुम्हें एक चीज दिखाएँ। यह कल दफ्तर से किसी की माँगकर लाए हैं।"

वह एक मैगजीन थी, जिसमें विदेशी स्त्रियों के नंगे-अधनंगे चित्र थे। ऐसी मैगजीन मैं पहले भी कई बार महपाठियों-दोस्तों के पास देख चुका था, अतः मुझे उसे देखने में विशेष रुचि न थी। पर वह स्वयं मुझे जिस ढंग से एक-एक पृष्ठ पलट कर दिखा रही थी, उससे प्राप्त सान्निध्य के कारण मन फिर से बेकाबू होने लगा, "बस, अब रहने भी दो।" अचानक इतना कहकर मैंने उसे बाँहों में भर लिया और चूमने लगा।

वह मकपका गई। किसी प्रकार कठिनाई से अपने शरीर को मुक्त करते हुए कहा, "यह क्या है? फिर बचपना करने लगे?"

"तो तुम चाहती हो, मैं यहाँ से वापस चला जाऊँ?" मुझे उसकी पाक-साफी पर गुस्सा आ गया था।

"यह बात नहीं, राजेश। लेकिन फिर यह भी सोचो, इस सबसे मिलेगा क्या? मैं भी व्यर्थ में पथभ्रष्ट हो जाऊँ तो तुम्हें अच्छा लगेगा? मैं मजबूर हूँ। मैं इसके आगे बढ़ भी तो नहीं सकती। आखिर विवाहित हूँ, दो बच्चों की माँ हूँ।"

"वह सब मुझे मालूम है। लेकिन मेरे संतोष के लिए एक बार—केवल एक बार..."

"नहीं, राजेश, अभी नहीं। अगर तुम इतना ही मुझ पर मोहित हो गए हो, तो अपनी शादी हो जाने के बाद मेरे पास आना। तब हम दोनों कुछ करेंगे भी, तो बराबर के अपराधी होंगे। तभी तुम्हें यह एहसास भी हो सकेगा कि अपने जीवन-साथी के साथ इस तरह का विश्वासघात करने के बाद मन को कितना पश्चात्ताप होता है।"

मुझे विश्वास हो गया कि वह मेरा साथ लाख चाहने पर भी उस रूप में नहीं देगी, जिस रूप में कि मैं कामना करता था।

इसके बाद दो बार और मेरा उसके घर लखनऊ जाना हुआ था और इन्हें मैं अपनी छठी व सातवीं मुलाकातें कह सकता हूँ, लेकिन ये दोनों मुलाकातें कम-अधिक पाँचवीं मुलाकात जैसी ही रहीं, अतः इनके बारे में कुछ अधिक न कह कर मैं आगे बढ़ता हूँ।

पीछे की ओर सँवारते हुए बोली, "अच्छा, पहले खाना निबटा लूं। तुम्हें
भूख भी तो लग आई होगी ?"
"भूख नही, प्यास।" मैंने उसे कलाई पकड़कर खींचना चाहा।
"मैंने कहा न, पहले खाना निबटा लो—बरतन वाली माई आती है
होगी। फिर बेबी को दूध भी पिलाना है। अगर वह इसी बीच जाग गई तो
खाना मुश्किल कर देगी।" वह अब एक घरेलू स्त्री हो गई थी।
भोजन करके मैं कुछ देर बिस्तर पर आराम करने लगा तथा इंतजार
करने लगा कि वह भी इधर-उधर के काम समेट कर मेरे पास आकर बैठे।
लेकिन उसका बारबार उस एक कमरे में अंदर आना-जाना तो जारी रहा,
किंतु जमकर बैठना संभव न हो सका। खाना निबटा कर और बरतन एक-
करके वह गुसलखाने मे कपड़े धोने चली गई। उन्हें छत पर सूखने डालकर
त्रित आई, तो कमरे की चीजें यथास्थान रखने लगी। फिर बच्ची सोकर उठ
गई थी। उसे दूध पिलाया तथा कपड़े बदले। इन सबसे निबटी कि बड़ा
बच्चा स्कूल आ गया और लिपटकर रोने लगा। किसी प्रकार उसे बहलाना
तथा टॉफी खाने को दी। मैं यह सारी व्यस्तता पलंग पर पड़े-पड़े देखता
रहा। और सोचता रहा।
तीन बजे के करीब जब आलोक पड़ोसियों के यहां खेलने चला गया और
बेबी फिर से सो-सी गई, वह आखिरकार मेरे पास आई तथा ड्रेसिंग टेबल
का स्टूल खींचकर बैठ गई, "तुम थोड़ा सो नहीं लिए ? सफर की थकान
भी तो होगी।"
"नींद ही नहीं आई।" मैं यों ही लेटे-लेटे बोला, "तुम्हारे 'साहब'
कितने बजे तक आएंगे ?" मुझे अब उखड़ापन-सा महसूस हो रहा था।
उसने भी शायद मेरी उदासी को मार्क किया होगा। अपने हाथों के
बीच मेरी हथेली दबा कर बोली, "नाराज हो ?"
"मैं क्यों नाराज होने लगा किसी से ? मेरा आखिर अधिकार ही क्या
है ?" सूनेपन मे मैं छत की ओर देखने लगा था। बात कह कर मैंने दीवार
की ओर करवट ले ली थी।
वह उठी और अलमारी खोल कर कुछ ले आई। दरवाजे का पर्दा
ठीक किया तथा मेरे पीछे पलंग पर आ गई, फिर मुझे गुदगुद

"बच्चा यह एक ही है।" उसने फिर पूछा—"या कोई और भी? एक लड़के के बारे में तो बुआ जी ने बताया था।"

"अभी तो एक ही है।" मैंने मुस्करा कर कहा, फिर पूछा, "आप बच्चों को साथ लाए हैं, या नहीं?"

"नहीं, उन्हें तो दादी के पास छोड़ आए हैं। चार-चार बच्चों के साथ कहीं घूमना हो पाता है।" उनके उत्तर से पता चला कि अब उनके बच्चों की संख्या चार तक पहुँच चुकी है।

"तो चलिए न इधर मेरे ही मेरे घर। यहीं पास में पटेलनगर में ही तो रहता हूँ।"

गाज़ीपुर डिपो की एक बस खाली जा रही थी। हम तीनों जल्दी से उसमें चढ़ गए तथा पद्रह मिनट के अंदर पटेलनगर पहुँच गए। घर पहुँच कर मैंने उन्हें बढ़िया नाश्ता कराया, फिर आग्रहपूर्वक रोक कर रात का खाना भी खिलाया। इस सबके बाद जब वे चले गए, तो पत्नी ने पूछा, "कौन थे यह लोग? आपने पहले तो कभी इनके बारे में नहीं बताया था।"

"पहले से क्या बताता। चाची जी की भतीजी है। यह आज अचानक करौलबाग में मिल गई। इसके मियाँ अपनी बहन के रिश्ते के लिए मेरे बहुत पीछे पड़े रहे थे पहले, अब उसी की शादी यहीं दिल्ली में कहीं हो गई है, सो उसी के घर आए हैं।"

पता नहीं, पत्नी को इतने से संतोष हुआ था या नहीं, पर अपनी मैं जानता हूँ कि उस रात पिछली बातें एक-एक कर याद आती रहीं और नींद आने का बहाना किए मैं एक ही करवट लिए पड़ा रहा।

अब आइए मुलाकात नंबर नौ, दस व ग्यारह पर।

मुलाकात नंबर नौ। स्थान बरेली, जगह चाची जी का घर। यह मुलाकात सिर्फ आधे घंटे की थी और इसमें बस मुझे यह पता चला कि उनके पति का तबादला शाहजहाँपुर हो गया है—[illegible] नौकरी के कारण यहीं ससुराल वाले मकान में [illegible] है और [illegible]

हूँ बहुत ऊब चुकी हूँ···है कोई रास्ता ?"

मैं चौकन्ना हुआ—"इस उम्र में ? अब तुम्हारे चार बच्चे हैं, उनकी भी जिम्मेदारी है···।"

"जिम्मेदारी···कर्तव्य···मैं आज इन शब्दों से तंग आ चुकी हूँ, राजेश। आखिर इतने वर्षों तक जिम्मेदारी निभाई, कर्तव्यपालन किया, तो मुझे क्या मिल गया···?" वह अपने पति और परिवार का रोना रोती रही, मैं चुपचाप बैठा सुनता रहा। फिर बिल आने पर मैंने पेमेण्ट करना चाहा तो उसने हाथ पकड़ कर रोक दिया। पुन: बेटर को टिप देकर हम लोग बाहर आ गए।

"तो अब जा रहे हो ? अच्छा, जाओ। समय निकाल कर कल किसी समय मेरे कमरे पर आना। उसने अपना होटल और रूम नंबर बताया।"

इसके बाद उससे मेरी ग्यारहवीं मुलाकात उसके पति के माध्यम से हुई। उसके पति मुझे बरेली के सुभाष मार्केट में मिल गए थे और लगभग जबरदस्ती घर ले गए थे। घर के अंदर चारों बच्चे आपस में लड़-झगड़ रहे थे लेकिन पिता को आया देखकर एकाएक चुप हो गए थे। मैंने चारों तरफ बिखरी चीजों पर नज़र दौड़ा कर पूछा, "अब आपके माता-पिता नहीं रहते यहाँ ?"

"माँ-बाप, भाई-बहन, किसी को इसने रहने दिया हो, तब न। वे अब छोटे भाई के पास हैं—पीलीभीत में···" वह तब तक स्कूल से नहीं आ पाई थी। उसके पति ने ही स्वयं चाय बना कर पिलाई और मैं उनकी व्यथा-कथा सुनता रहा। मैं जल्दी ही उनसे 'नमस्कार' कर लेने की सोच रहा था कि वह आ गई। पर उसने मेरी ओर देखकर भी अनदेखा कर दिया। सीधे जाकर बड़े से आँगन के दूसरी ओर कमरे में कपड़े बदलने लगी। बाहर आने पर उसके पति ने टोका, "यह देखो, राजेश बाबू आए हैं।"

"आए हैं, तो क्या करूँ ? इन्हें भी तुम अपनी दुख-भरी गाथा सुनाने ही तो लाए होगे, सो सुना चुके ? मैं जानती हूँ, तुम जितने भी मेरे जान-पहचान वाले हैं, उनसे मेरी बुराई किए बगैर नहीं मानोगे ?"

"लेकिन भाई साहब ने मुझसे ऐसा कुछ भी नहीं कहा।" मैंने अपनी सफाई देनी चाही।

हूँ बहुत तंग चुकी हूँ… है कोई रास्ता ?"

मैं चौकन्ना हुआ—"इस उम्र में ? अब तुम्हारे चार बच्चे हैं, उनकी भी जिम्मेदारी है…।"

"जिम्मेदारी ? बकवास ! मैं आज इन शब्दों से तंग आ चुकी हूँ, राजेश। आखिर इतने वर्षों तक जिम्मेदारी निभाई, कर्तव्यपालन किया, तो मुझे क्या मिल गया… ?" वह अपने पति और परिवार का रोना रोती रही, मैं चुपचाप बैठा सुनता रहा। फिर बिल आने पर मैंने पेमेण्ट करना चाहा तो उसने हाथ पकड़ कर रोक दिया। पुन वेटर को टिप देकर हम लोग बाहर आ गए।

"तो अब जा रहे हो ? अच्छा, जाओ। समय निकाल कर कभी किसी समय मेरे कमरे पर आना। उसने अपना होटल और रूम नंबर बताया।"

इसके बाद उससे मेरी ग्यारहवीं मुलाकात उसके पति के माध्यम से हुई। उसके पति मुझे करोल बाग के गुसाल मार्केट में मिल गए थे और लगभग जबरदस्ती घर ले गए थे। घर के अंदर चारों बच्चे आपस में लड़-झगड़ रहे थे लेकिन पिता को आया देखकर एकाएक चुप हो गए थे। मैंने चारों तरफ बिखरी चीजों पर नज़र दौड़ा कर पूछा, "अब आपके माता-पिता नहीं रहते यहाँ ?"

"माँ-बाप, भाई-बहन, किसी को इसने रहने दिया हो, तब न। वे अब छोटे भाई के पास हैं—पी॰ओ॰भी॰ में …" वह तब तक स्कूल से नहीं आ पाई थी। उसके पति ने ही स्वयं चाय बना कर पिलाई और मैं उनकी व्यथा-कथा सुनता रहा। मैं जल्दी ही उनसे 'नमस्कार' कर लेने की सोच रहा था कि वह आ गई। पर उसने मेरी ओर देखकर भी अनदेखा कर दिया। सीधे जाकर वह से आँगन के दूसरी ओर कमरे में कपड़े बदलने लगी। बाहर आने पर उसके पति ने टोका, "यह देखो, राजेश बाबू आए हैं।"

"आए हैं, तो क्या करूँ ? इन्हें भी तुम अपनी दुख-भरी गाथा सुनाने ही तो लाए होगे, सो सुना चुके ? मैं जानती हूँ, तुम जितने भी मेरे जान-पहचान वाले हैं, उनसे मेरी बुराई किए बगैर मानोगे थोड़े ?"

"लेकिन भाई साहब ने मुझसे ऐसा कुछ भी नहीं कहा।" मैंने अपनी सफाई देनी चाही।

"वाह! भाई वाह! [illegible] तो यह तुम्हारे भाई साहब कब से हो गए?"

मैं इस [illegible] हुए बोला, "तुम खामखाह [illegible] तुम्हारी [illegible] है, तुम जानो, तुम्हारा काम [illegible]"

[illegible] नहीं है [illegible] हो यहाँ आग लगाने!" उसने [illegible] कहा।

[illegible] मैं भी गर्म हो गया, "यह मत भूलो कि बिना बुलाए मैं किसी [illegible] भी यहाँ नहीं आता। अब कभी जो आऊँ तो [illegible] बाहर निकल गया।

और अब आता हूँ फरवरी सन् '७० की मुलाकात पर, यानी अब तक की जिंदगी की आखिरी मुलाकात। गम की दृष्टि से यह हमारी बारहवीं मुलाकात थी।

गाडेनवाल की दुकान में उठ कर गली तक पहुँचने का विवरण मैं पहले ही दे चुका हूँ। बरेली में पत्नी के चचेरे भाई ने, जो अभी सिर्फ सत्रह-अठारह साल का था, अचानक आत्महत्या कर ली थी और सूचना पाकर तुरत उनके यहाँ आना पड़ा था। यों वहाँ मैं सुबह-सुबह ही पहुँच गया था। दिन-भर उन लोगों के दुःख में भागीदार रहा था। लेकिन शाम होते-होते मन कुछ उचाट गया था कि मैं अपने पुराने दोस्त खंडेलवाल की दुकान पर जाकर बैठ गया था। फिर अचानक उसे सामने रिक्शे से उतरते देखकर पहले तो सोचा था कि क्या जरूरत है मिलने-मिलाने की, लेकिन तुरत ही खयाल आया कि इस जिंदगी का क्या ठिकाना—आज है, कल नहीं, और फिर दो दशक पुरानी जान-पहचान से क्या यूँ ही मुँह मोड़ा जा सकता है? उत्सुकता भी जगी कि देखें, अब उसका नवीनतम रूप कैसा है।

आगे बढ़ते हुए उससे पूछा, "कैसे हालचाल हैं तुम्हारे?"

"ठीक हूँ—और तुम कैसी हो अब?"

"देख तो रहे हो।" उसने मुसकराने की चेष्टा की—"जिंदगी आधी गुजर चुकी है, आधी और गुजर जाएगी किसी तरह⋯।"

"लगता है, बहुत परेशान हो—क्या बीमार रही थीं पिछले [illegible]?

चेहरा बहुत थका-थका-सा लगता है।"

"अब···तीस के ऊपर उम्र हो गई, बीमारियाँ तो घेरेंगी ही ··। मुझे ब्लडप्रेशर बताया है डॉक्टर ने···दिल भी काफी कमजोर हो गया है। मानो बैठती हूँ, तो आँखों में आँसू आ जाते हैं, तुम तो रुकोगे दो-चार दिन ?"

"नही, कल वापस चला जाऊँगा। पत्नी के चचेरे भाई ने आत्महत्या कर ली थी, इस कारण आना पड़ा। बेचारा बी० एस-सी० में पढ़ता था।"

वह निर्विकार थी—"क्यों कर ली आत्महत्या ? क्या कोई प्यार-व्यार का चक्कर था ?"

"ऐसा तो शायद कुछ नही था, लेकिन वह अपने को अकेला महसूस करता था। वही अकेलापन उसे खा गया। उसने चूहे मारने की दवा ले ली। लगता है, उसने मरने का दृढ़ निश्चय कर लिया था ··"

"कभी ऐसा ही अगर मेरे बारे में भी सुनो, तो ताज्जुब मत करना।" उसकी आँखों में गीलापन था।

"क्या कहती हो ··!" मैं उसके घर के दरवाजे तक पहुँचकर रुक गया था।

"ठीक ही कहती हूँ, मैं अब बिलकुल टूट चुकी हूँ, राजेश। जिंदगी और जवानी के जो-जो सपने थे, वे अब नष्ट हो चुके हैं। चाहती हूँ, किसी दिन अब मौत ही चुपके से आ जाए और मेरा वरण कर ले। मैं मौन था। ऐसे में उससे कहता भी क्या ? कुछ रुक कर वह दो सीढ़ियाँ चढ़ गई तथा पूछा, "अंदर नही आओगे ?"

"क्या करूँगा अंदर आकर। अब फिर कभी आऊँगा।"

"फिर तो आ चुके तुम। मसूरी में भी तो ऐसे ही बह गए थे···?"

"वह बात और थी—मसूरी में तो मैं तुम्हारी एग्रेसिवनेस से डर गया था।"

"तुम लोग आखिर स्त्री से चाहते क्या हो ? जब वह पैसिव होती है, तो उसे कोल्ड कह देते हो, और जब एग्रेसिव होती है, तो कुलटा। खैर छोड़ो·· चलना चाहो तो चले चलो, थोड़ी देर बैठ कर चले जाना।"

"घर में है कौन-कौन ?"

"सभी हैं—सास-ससुर भी आजकल आए हुए हैं।"

"तो छोड़ो, फिर कभी आऊँगा।"

"जैसी तुम्हारी मरज़ी।"

"अच्छा, नमस्कार।"

"नमस्कार।" कह कर वह जीने पर चढ गई। मुझे कुछ क्षण तो उसकी पदचाप सुनाई देती रही, फिर वह भी बंद हो गई।

अच्छा, रीता रानी, अलविदा। अब देखो, आगे कब मिलना हो। मैंने मन ही मन दोहराया तथा दरवाज़े को पीछे छोड़ने की कोशिश में चाल पहले से तेज कर दी। थोडा दूर चलने के बाद मैंने गरदन घुमा कर देखा, उसका मकान अब दिखाई नहीं दे रहा था।

मान्यताएँ

भोपाल-राँची मार्ग पर रायसेन से कुछ ही पहले वह मजार थी जहाँ ड्राइवर ने अचानक गाड़ी रोकी थी। हम लोग कुछ भी न समझ पाए किंतु गाड़ी चलते ही डा० श्रीवास्तव ने बताया, "यह जगह ऐसी है जहाँ काफी मनौतियाँ माँगी जाती हैं। ऐसा विश्वास है कि यहाँ रुक कर पीर के प्रति आदर प्रगट करने से ऐक्सीडेंट नहीं होता।'

मैं और राज ड्राइवर के साथ ही बैठे थे। सुन कर हम ड्राइवर की ओर देखने लगे कि वह भी कुछ कहे। ड्राइवर ने भी [illegible] हमारे मन की उत्सुकता भाँप ली और बोला "बात यह है कि सबका अपना-अपना विश्वास है। मैं तो जब भी इधर से गुजरता हूँ यहाँ आकर दो मिनट गाड़ी रोक कर इंजन बंद कर देता हूँ। बड़े-बड़े ऐक्सीडेंट हुए हैं इस सड़क पर क्योंकि रास्ता पहाड़ी है पर अपना आज तक एक भी ऐक्सीडेंट भी नहीं हुआ।"

मेरा अपना स्वभाव ऐसी बातों पर विरोध प्रगट करने का है पर उस समय यही सोचकर चुप लगा गया कि [illegible] ड्राइवर का ध्यान भी बातचीत में बँट जाएगा।

और कुछ दूर [illegible] में हम लोग रायसेन [illegible] निकलते समय ठीक पुलिस स्टेशन के सामने यह दुर्घटना घटी।

दुर्घटना [illegible]

घबराए तो हुए थे पर भयभीत कहीं ज्यादा हो गए और [illegible] नहीं [illegible] कि अब क्या करना चाहिए और आगे क्या होगा।
डा० श्रीवास्तव ने [illegible] सारी स्थिति संभाली थी। वे अंतर के ही और काफी आत्म-[illegible] निकले। अपनी व्यावहारिक बुद्धि और [illegible] उन्होंने हम कमजोर मन के लोगों को [illegible] और स्वयं आगे ही सारी स्थिति [illegible] हो गए।

दुर्घटना [illegible] गई। अपने वैज्ञानिक ज्ञान और उससे प्राप्त दृष्टि [illegible] मानता हूँ कि जीवन में कुछ घटनाएँ जैसे [illegible] और उन्हें हम 'संयोग से हुई घटनाएँ' कहते हैं। यदि [illegible] अपनी होनी दिखाता है तो सारी योजनाएँ या 'आग' जीवन में कब भी अपनी होनी दिखाता है तो सारी योजनाएँ और संभावनाएँ धरी रह जाती हैं और साथ ही प्रमुख प्रश्न उठता है।

किन्तु मेरा मित्र और सहकर्मी राज यह तर्क नहीं मानता। वह 'विधि के विधान' में आस्था रखता है और गोस्वामी तुलसीदास को उद्धृत करने लगता है—'हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि हाथ।'

हमारे साथ उस दिन जो अन्य साथी थे, उनमें डा० श्रीवास्तव का जिक्र ऊपर आ चुका है। उसी कार में हमारे एक अन्य साथी और वरिष्ठ सहकर्मी डा० गुप्ता भी थे जो कम-अधिक डा० श्रीवास्तव की विचारधारा को ही मानते थे।

कार में बैठे डा० एवं श्रीमती खंडेलवाल की विचारधाराओं का जिक्र आगे आएगा। वैसे सच पूछा जाए तो उनकी कोई विचारधारा थी भी नहीं। उनकी कोशिश और चेहरे का भाव यही था कि किसी प्रकार ऐसा हो सके—पूरे मामले से उनका कोई संबंध न जोड़ा जाए। वे शायद उन लोगों में से थे जो दोस्तों का साथ उस वक्त तक देते हैं जब तक कि कोई संकट न आए। संकट आते ही दोस्तों को अपने हाल पर छोड़कर वे वहाँ से अलग होने की सोचने लगते हैं। लेकिन इस सबसे पहले अच्छा होगा कि दुर्घटना के बारे में कुछ बता दिया जाए।

हमारी कार जैसे ही रायसेन से निकलने को हुई वहाँ एक स्कूल आ

गया था। तीन बजे अपराह्न का समय था, बच्चों की शायद छुट्टी हुई थी और वे ट्रैफिक में देखकर सड़क पार कर रहे थे। हमारे ड्राइवर ने एकदम स्पीड कम कर दी और जोर से हार्न बजाया। सारे बच्चे सड़क के दोनों किनारों पर हो गए, मानो वे हमें 'गार्ड आफ आनर' देने वाले हों। और हम उनके बीच से गुजरना हो। सब कुछ ठीक था हमारी गाड़ी उन बच्चों को पीछे छोड़कर आगे निकलने वाली थी कि तभी एक फूल-सी सुंदर लड़की ने अचानक से देखकर होकर भागते हुए सड़क पार करने की सोची। मेरे देखते ही देखते वह दौड़ पड़ी और जब तक ड्राइवर गाड़ी काटे या बचाए, वह अगले पहिए की मडगार्ड से टकराकर सड़क पर गिर पड़ी। घबराहट होते हुए भी हमारे ड्राइवर ने तत्परता दिखाई। उसने बच्ची को सड़क से उठाकर कंधे से चिपका लिया और आगे की सीट पर लिटाकर गाड़ी अस्पताल की ओर मोड़ दी।

डा० श्रीवास्तव और मैं थाने में सूचना देने चले गए और बाद में अस्पताल पहुँचे। वहाँ डाक्टर अंदर आपरेशन कर रहा था। राज ने, जो ड्राइवर के साथ ही अस्पताल आ चुका था, बताया कि हालत गंभीर है और बच्ची के बचने की उम्मीद कम है।

डा० श्रीवास्तव इस बीच भोपाल अपने एक संबंधी को फोन कर आए। उनके यह संबंधी पुलिस के कोई बड़े अफसर थे और उन्होंने जवाब में कहा कि स्वयं घटनास्थल पर पहुँच रहे हैं। डा० खंडेलवाल ने यह सुना तो उनकी जान में जान आ गई, क्योंकि तब तक वे इतने परेशान नजर आ रहे थे मानो ऐक्सीडेंट उन्होंने ही किया हो और उसके लिए वे गिरफ्तार होने वाले हों। जो हो, डा० श्रीवास्तव उम्र में बड़े होने के कारण डा० खंडेलवाल का आदर करते थे, अत: कह दिया, "आप लोग अब निश्चिंत रहें। जो भी होगा निबट लिया जाएगा।"

"तो हम लोगों की भी गवाहियाँ होंगी और हमें रुकना पड़ेगा अभी?" डा० खंडेलवाल ने पूछा।

"आप लोग तब तक कोआपरेटिव बैंक चले जाएँ। वहाँ का मैनेजर मेरा मित्र है। उसे सारी स्थिति बता दें और यहाँ आने को कहें। जरूरत होगी तो आप लोगों को वहाँ से बुलवा लिया जाएगा, वरना आप वहीं

। रोज़ की शाम से थोड़ा पहले । लेकिन उसे स्वयं आश्चर्य था कि वह
ो कर क्या नहीं पा रही ।···क्या वह निर्जीव-सी पड़ी है इस तरह ?
ा में किसी प्रकार उसने अपनी सारी शक्ति से जोर लगाया और
र वहीं होश में सफल न हो गई ।
पुष्पा-विजय तो यकायक सकते में आ गये । जैसे किसी ने गहरी नींद
झँझोड़कर उठाया हो उन्हें, भेद-भरी दृष्टि से एक दूसरे को ताकते
। सोचने और जानने की उनकी सारी शक्ति, मानो पूरी तरह से लुप्त
ई थी । मौनवश से वे, एक-दूसरे से कुछ कहना चाहते थे, पर शब्द
मिल रहे थे । ··जानकी भी एक पल को वो ही मूर्तिवत् खड़ी रही
'बाथरूम' की ओर चल दी ।
दोनों को मानो प्रकृतिस्थ होने का उपयुक्त अवसर मिल गया ।
रा नीचे चलकर देखें ···" कहती हुई पुष्पा तुरन्त उठ खड़ी हुई । तभी,
र चला, मैं आता हूँ ···" कहता हुआ विजय भी उठ बैठा और पत्नी
ारस आने पर बिना कुछ कहे-सुने डॉन की ओर चल दिया ।

दोपहर होने तक फिर कोई विशेष घटना न घटी । सिवाय इसके
सभी सम्बद्ध व्यक्ति अपने-अपने तक ही सीमित रहे और किसी प्रकार
ाय काटते रहे ।···विजय की पत्नी एक ओर बहू के कामों में व्यस्त
गई दी तो पुष्पा दूसरी ओर मंजुला के कमरे में घुसी रही । रहा
जय, सो वह सुबह ही सुबह निवृत्त होकर एक मित्र के घर चला गया ।
र मित्र को साथ लेकर दूसरे और तीसरे मित्रों के मकान खोजता फिरा
ार जब सबों से मिलकर लौटा, तो दोपहर का भोजन किया जा चुका था ।
बस कुछ बुजुर्गवार औरतें बची थीं जो इस समय पत्तलें बिछाये टीका-
टिप्पणी करती हुई बतिया रही थीं । चर्चा का विषय था कि अब अगली
ादी किसकी होगी, जिसमें सब लोग इस प्रकार मिल सकेंगे । मंजुला की
ी ने बताया, "वैसे हमारे घर में तो अगली बारी पुष्पा की ही है । लेकिन
मैरिज' तो शायद यहाँ से नहीं, वहीं से करेंगी जहाँ रहती है ।···क्यों
मैली, पुष्पा का ब्याह सागर ही में करोगी न ?"
"हाँ जिज्जी ! जहाँ रहते रहो, वहीं से आसानी रहती है ।···वैसे

अगर लड़का इधर ही कहीं का मिल गया तो यहीं से कर लेंगे। अब तो निपट गई हो, नज़र रखना तुम भी…"

संयोग से विजय वहां खड़ा था और यह सब सुन रहा था। उसकी माताजी कह रही थीं—"वैसे तो हमारी बहू का ही एक भाई है, चचेरा। उन लोगों का शीशे का बहुत बड़ा कारखाना है…लड़का अलग से मसूरी में एक होटल खोले हुए है। कहो तो विजय से चिट्ठी डलवा दूं ?"

विजय का मन हुआ, कहे—बस रहने दो माताजी। कहाँ तो थर्ड क्लास (थर्ड क्लास एम० ए० भी !) आनन्द और कहाँ ए-ग्रेड, प्रतिभा-शालिनी पुष्पा (एक एम० बी० बी० एस० लेडी-डाक्टर !)…कोई तुलना भी तो हो।" पर प्रगट में पूछा—"विदा का अब क्या समय तय हुआ है ?"

प्रश्न ने सबका ध्यान आकर्षित किया। मंजुला की माँ ने कहा—"अरे विजय, कहाँ थे सुबह से ? वह कुँवर-कलेवे में मिला सामान भी तो बँधवा दो ज़रा…और तुमने खाना अभी तक खाया या नहीं ?"…पुष्पा की माँ पूछ बैठी—"तो विजय, क्या है पता तुम्हारे साले का ? अच्छा पहले खाना खा लो, फिर एक कागज़ पर लिख देना…" उसकी अपनी माता जी ने आवाज़ लगाई—"अरे बहू ! ज़रा विजय के लिए खाना तो ले आओ। थोड़ी-थोड़ी सभी सब्ज़ियाँ रख लाना…"

विजय ने देखा, और उसे ऐसी आशंका भी थी, 'बहू' बाहर निकल-कर नहीं आई। "शायद सो गई है…" मंजुला की माँ ने कहा फिर तनिक ज़ोर से पुष्पा को पुकारा।

"जी…।" कहती हुई पुष्पा आई और विजय को देखा। वह इस समय सलवार-कुर्ते में थी।

"ज़रा इन्हें खाना खिला देना, बेटी।…ले जाओ, वहीं कमरे में ले जाओ चाहे…" मंजुला की माँ ने निर्देश दिये।

"चलिये…" कहते हुए पुष्पा को हँसी आने को हुई। शायद यह सोचते हुए कि उसी कमरे में मंजुला भी है।

विजय आगे-आगे आया और पीछे से पुष्पा। फिर पुष्पा उसके बैठने का प्रबन्ध करके खाना लेने चली गई और विजय ने देखा कि संयोगवश इस समय कमरे में वही दोनों रह गये हैं।… जल्दी से उसने कहा—

"मजुला, तुमने मुझे खास तौर से जरूर-जरूर बुलाया था।···कुछ कहना चाहती हो ?"

"क्या कहूँ"—मजुला के स्वर में दार्शनिकता-सी थी—"जयमाल और फिर भाँवरों के फोटो तो आपने खीच ही लिए हैं"

'यह क्या बात हुई।'—विजय ने सोचा। प्रगट में कहा—"हाँ-हाँ 'फोटोज' के 'रिप्रिंट्स' मैं शीघ्र ही तुम्हें भेजूंगा। कुछ 'पोजेज' तो, मुझे उम्मीद है 'ऐक्सिलेंट' आये हैं। और कहो· मेरा मतलब है अपने 'हसबेंड' के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है ? पसद आये ·?" कहते-कहते उसने मजुला की हथेली को हल्के से दबाया।

एक जोडी बडी-बडी आँखें ऊपर को उठीं और तत्काल ही फिर झुक गईं। एक पल ही के उस दृष्टि-विनिमय में मानो उन्होंने अपनी समस्त अन्तर्निहित पीडा और अवसाद को शब्द दे दिये। और आश्चर्य यह कि वे शब्द इतने शक्तिशाली थे कि उनका उत्तर 'मौन' हो गया। विजय को स्वयं विस्मय हुआ, उसे हो क्या गया है, जो आगे बात नहीं कर पा रहा। ऐसा तो पहले, कभी भी कहीं पर नहीं हुआ।

···वह द्वार की ओर देखने लगा। फिर धीरे-धीरे बोला—"मुझसे कोई भूल हो गई हो, तो क्षमा कर देना। अब न मालूम कब भेंट हो। हो सके, तो पत्र-व्यवहार जारी रखना··"

मजुला पूर्ववत् सुनती रही। विजय का हृदय भी अब द्रवित हो उठा और मौका मिलते ही उसने मजुला की हथेली को खींचकर होंठों से चूमा, पुन गाल और आँखों से स्पर्श कराया।·· मन हुआ अंतिम बार बाँहों में भींचकर अधरों को भी चूम ले। प्रगट में कहा—"मेरी एक इच्छा है। वह कल वाली साडी तुम अपने साथ ही ले जाना और 'उस समय' पहनना ···इसी बहाने मेरी याद आ जायेगी।

लेकिन वह साडी तो पुष्पा के पास है ? पुष्पा खाना लेकर आई तो विजय ने साडी के बारे में पूछा। पर जो उत्तर मिला, वह अनपेक्षित था—"साडी। कैसी साडी ? ··अरे, मैं तो भाभी वह आपने ··· को दे दी है।···फिर आप वापस क्यों माँग रहे हैं ?" चेहरे पर उसके शरारत-भरी मुसकान थी।

"अवसर आने पर मुंह भी दूंगा। जब तुम्हारी शादी होगी और...
बुआ आती, तो इससे भी बढ़िया साड़ी लेकर आऊँगा। यह वाली तो
...है तो।...यह तो मेरी पत्नी की साड़ी है...उनकी शादी की
...ी...।" विजय सोच रहा था, यह क्यों बताऊँ कि मैं इसे मजुना को
...चाह रहा हूँ।

लेकिन पुष्पा क्यों इतनी आसानी से मान जाती। चिढ़ाने के अन्दाज में
...नी, "तो जनाब, यह साड़ी मजुना 'दी' को ही दे दीजिए न। इनकी तो
...ादी भी हो रही है...मेरा मतलब है, हो चुकी है। और उनमें यह कल
कितनी आकर्षक लग रही थी, आपने भी देखा है।"

विजय ने कोई उत्तर न देकर व्यस्तता का भाव प्रकट करना चाहा।
वह तनिक जल्दी-जल्दी कौर तोड़कर मुँह में डालने लगा।...लेकिन पुष्पा
ने तब भी न छोड़ा—"लगता है, आप बड़े कंजूस हैं। या अपनी बीवी से
इतना डरते हैं...?"

"हाँ-हाँ, मुझसे तो डरेंगे ही। अरे मुझसे नहीं, ईश्वर से ही डरते, तो
काहे को यह दिन देखने पड़ते ..." यकायक ही मानो विस्फोट-सा हो गया
और न जाने कहाँ से आकर अकस्मात् जानकी कमरे के बीच उपस्थित हो
गई। आँखें लाल-अंगारे जैसी, भौंहें टेढ़ी-चढ़ी हुई, और जिह्वा व्यंग्य-बाण
बरसाती हुई ...ऐसा था जानकी का विकृत यह रूप।

स्थिति बिगड़ते देखकर, तीनों को 'आधी साँस ऊपर और आधी नीचे'
वाली दशा हो गई। समझ में ही न आ रहा था कि क्या करें, या क्या कह-
कर इस 'आक्रमण' का सामना करें।...विजय ने एक बार डाँटा भी—
"यह क्या यहाँ नाटक-सा कर रही हो? जो कुछ करना हो, मुझसे बाद में
कहना ...।" इस पर जानकी और भी अकड़ गई—"क्यों कहूँ बाद में
मुझे क्या किसी का डर पड़ा है?...मैं तो अभी कहूँगी और चिल्लाकर
कहूँगी।...जिन्होंने मेरी जिन्दगानी में जहर घोला है, उनसे बदला लेकर
रहूँगी। आज सब लोग देख तो लें आकर तुम लोगों के काले कारनामे...।"

विवाह का अवसर था और विदाई का समय। ऐसे में बाहर से आये
मेहमान तो थे ही, मुहल्ले-पड़ोस के 'समाज-सेवी' भी उपस्थित थे। फिर
इतने चटपटे 'स्कैंडल' का प्रचार-प्रसार न करके वे 'अधर्म' को बढ़ावा

आभार लिया।

उसी समय पुष्पा के 'डैडी' बाहर आये और बोले—"अब डाक्टर तो जाओ, उठो ...नहीं तो बीमार पड़ जाओगी। फिर वह महोदय के समीप आकर बोले, 'आप आराम से बैठिये न। या अच्छा हो, पलंग पर बिस्तर लगता है—लेटकर आराम कीजिए। अभी तो तीन-चार घंटे बाकी हैं।'

'नहीं, मैं ठीक बैठा हूँ। 'बल्कि अच्छा हो आप मेरी चिंता छोड़कर अपनी सुविधाओं का ख्याल करें'' "

सुनकर पुष्पा मन रहा गया। चलते-चलते विजय से बोली—"आखिर वह रूठे किस बात पर है ?'

"पता नहीं..." विजय ने कहा और साथ हो लिया। अन्दर पहुँचकर पुष्पा बाँये के कमरे में जाने लगी, तो विजय ने भी झाँककर देखा। कमरे में हल्के पादर का बल्ब जल रहा था और कुछ औरतें-बच्चे फर्श की दरी पर इधर-उधर लेटे सो रहे थे। एक ओर कोने में मंजुला मूर्तिवत् घुटनों के बीच सर किये बैठी थी। शायद रो रही है—सोचकर, वह भी संकोच छोड़ अन्दर घुस गया।

मंजुला को मानो ऐसी आशा न रही हो। कितने आश्चर्य की बात थी कि जिस विजय से बहुत कुछ कह डालने को वह कई दिन से बेचैन थी, वही विजय अब सामने था। लेकिन अब वह इस समय, इतने लोगों के बीच फँसी होकर, कहे भी क्या ? और दुःख की गहनता क्या वास्तव में कोई कहने की चीज है ? समझने वाला हो, तो क्या मौन से सब कुछ नहीं समझ सकता।...सोचती हुई वह चुप ही बनी रही।

और विजय भी इस समय क्या कहता ?...बधाई। नहीं, यह तो बड़ा हास्यास्पद लगेगा।...रो क्यों रही थी ? भला, यह कोई पूछने की बात है।...परेशान-सा विजय पास रखे बक्से पर बैठकर निरुद्देश्य-सा इधर-उधर देखने लगा। और ऊपर से आती 'सीलिंग फैन' की हवा के बावजूद भी उसे पसीना छूटने लगा।

शायद पुष्पा को भी कुछ घुटन महसूस हुई थी। उसी से उबरने के खयाल से बोली—"चलो मंजुला 'दी' छत पर चलकर कुछ देर आराम कर लो।"

"नहीं, मैं ठीक हूँ···तुम सोओ।" और इस संक्षिप्त वाक्य के बाद वातावरण में पुनः स्थिरता आ गई।

तभी विजय ने देखा, घर की कोई 'बहू' दरवाज़े पर आकर लौटने लगी। शायद उसका इस समय यहाँ 'लड़की' के पास बैठना घरवालों की आँखों में खटक रहा है।···सोचकर वह उठने लगा, कि मंजुला बोली—"यह साड़ी रखी है, लेते जाइये···"

"पुष्पा के सुपुर्द कर दो···फिर ले लूंगा।" उसने अब अधिक रुकना फजूल समझा।

छत पर कुछ सुझाई नहीं देता। संभवत, अँधेरा पक्ष है, और सीढ़ियों की रोशनी खराब है, इस कारण से आज मेहमानों की संख्या भी तो अधिकतम पर पहुँच गई है और उनमें से जिनको भी नीचे पड़ी खाटों पर जगह नहीं मिली वे सब इस समय छत पर पड़े हैं।···विजय वैसे ही काफी परेशान था, यह दृश्य देखकर और भी कुढ़ गया। प्रत्येक बिस्तर के पास जाने और सोये हुओं के चेहरों पर झुककर पहचान करने में उसे अच्छी-खासी कसरत करनी पड़ी और तब कहीं, अलग हटकर तीसरे कोने में पत्नी की शक्ल दिखाई दी।···वह बच्चे को बीच में करके बैठ गया और आहिस्ते से पूछा—"क्या सो गई···?"

जानकी कुछ ही देर पहले सो पाई थी। अब पति का स्वर सुनकर पुनः जाग गई और कुछ कहने ही जा रही थी कि विजय ने पूछा—"चाबी का गुच्छा कहाँ रखा है?···कपड़े बदलकर सोऊँ।"

इस वाक्य ने मानो बाण का काम किया। तिलमिलाती हुई बोली, "मुझे नहीं मालूम।"

विजय ने समझ लिया, अवश्य कुछ गड़बड़ है। पर इस समय विवाद करना बेकार होगा, सोचकर उन्हीं कपड़ों से लेटा रहा। अब जो हो, कल देखूंगा, सोचकर उसने मुख दूसरी ओर घुमाकर, पीठ पत्नी की ओर कर ली। तदुपरांत नेत्र बन्द करके नींद लाने की कोशिश करने लगा।

तभी किसी की पदचाप सुनाई दी। विजय ने नेत्र खोलकर देखा—अँधेरे में पुष्पा की लंबोतरी आकृति पास आती मालूम दी। और अगले ही क्षण उसकी स्वरलहरी भी सुनाई दी—"क्या आप लोग सो गये?"

"नहीं तो···आओ" —विजय ने सोचा, शायद यह अगले कार्यक्रम के में बताने आई है।

पुष्पा घूमकर विजय की ओर गई और पास बैठती हुई बोली—"मुझे नींद आ नहीं रही। सोचा, जब तक भाँवरें शुरू हों, तब तक आप लोगों पास ही बैठूं।···अरे, भाभी तो सो रही है।"

सुनते हुए भी जानकी ने कोई जवाब न दिया। विजय से उसकी यह कारी छिपी न रही, अतः मन ही मन कहा—'खुराफाती औरत!' स्वर में बोला—"नींद तो अभी मुझे भी नहीं आ रही। · नीचे क्या हो रहा है?" वह चाहता था मंजुला के बारे में पूछे, लेकिन साफ-साफ क्यों र पूछ सकता था।

"कुछ भी तो नहीं। ··शायद अभी भाँवरों के शुरू होने में कुछ समय लगेगा।"···पुष्पा सोचने लगी, यह इस समय इनके पास क्यों आई?

कुछ देर तक यों ही इधर-उधर की बातें होती रहीं। अंत में, हाँ-हूँ करते-करते विजय का जी अलसाने लगा और आँखें झपकने लगीं। फल-स्वरूप उसने पुष्पा को सुझाव दिया कि चाहे, तो वह भी तब तक यहीं लेट रहे। पुष्पा मान गई और उसकी चादर को तकिये की भाँति सर के नीचे रखकर बराबर में लेटकर बातें करने लगी। बातें शुरू में साधारण विषयों यथा फिल्म, राजनीति और देश की दुर्दशा के बारे में ही थीं। फिर पश्चिमी देशों के बारे में चर्चा चली और वहाँ के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य एवं आर्थिक सम्पन्नता पर बहस होने लगी।

पुष्पा ने किंचित् रोष में कहा—"पता नहीं अपना भारत देश उनकी बराबरी को कब पहुँचेगा···?"

"[illegible] में उनके कदमों पर ही क्यों चलना चाहती

[illegible]

उपज हो···" विजय को लगा कि वह किसी उपदेशक [illegible] लगा है, अतः संशोधन किया—"मेरा मतलब यह है कि हमारे युवक-युवतियों में दृढ़ता अधिक हो और वह किसी दूसरे के बनाये सिद्धांतों पर न चलकर स्वयं निश्चय करें कि उन्हें किधर जाना है···।" कहने का

विजय कह तो गया पर लगा बात पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाई।

पुष्पा ने भी शायद 'वक्तव्य' की कमजोरी भाँप ली, पूछा—"दृढ़ता मे आपका अभिप्राय क्या है आखिर ? प्रायः यहाँ के लडके-लड़की सोचते कुछ हैं और विभिन्न दबावों-प्रलोभनों मे फँसकर करते कुछ और हैं—क्या यही दृढ़ता है ?"

विजय के ऊपर यह सीधी चोट थी।···वह आहत हो गया। लेकि [illegible]

"सिद्धांततः मैं कहूँगा जो ऐसा करते हैं, वे गलत करते हैं।···और यह भी निश्चित है कि गलती का दण्ड भी उन्हें मिलता ही है किसी न किसी रूप में। कुछ न सही तो पश्चाताप के रूप में ही···" अंतिम वाक्य कहते समय वह न चाहते हुए भी कुछ भावुक हो आया।

पुष्पा को उसकी यह 'स्वीकृति' अच्छी लगी। सहानुभूति से भरकर उसने अब भरपूर नजर से विजय को देखा तो वह उसे वास्तव मे दया का पात्र लगा।···फिर यह दिखाने के लिए कि वह उसकी बातों को शिकायत न समझे, वह उसके और पास हो गई और लगभग फुसफुसाकर कहा—"आपकी मिसेज जाग तो नहीं रही ?···कहीं वे हम लोगों पर संदेह करें···।"

विजय के नासापुटों मे किसी सुगंधित 'हेयर आयल' की गंध भर गई। लेकिन यह गंध तो सुपरिचित-सी थी। 'क्या इसने भी मंजुला का ही केश-तैल इस्तेमाल किया है आज···?" सोचने से पृष्ठभूमि मे छूट गई मंजुला पुनः सामने के पर्दे पर आ गई···अँधेरे मे जडबुद्धि-सा कुछ देर तो वह उसे निहारता रहा, फिर उसका मन प्यार करने को मचल उठा।···और सचमुच ही कुछ देर तक उसे बिलकुल ही ध्यान न रहा कि जिस 'प्रेमिका' के सामीप्य का आनन्द वह केश सूँघकर या हथेलियाँ दबाकर और बाद मे सीने से लगाकर लेने लगा है, वह वास्तव मे मंजुला नहीं, मंजुला की बहन है···।"

जानकी की सहनशीलता की यह अंतिम सीमा थी। सोने का नाटक भी आखिर वह कब तक निभाती। इस समय उसका मन हुआ कि वह फट-

मेरा मन है फोटो रील। तुम्हारी प्रत्येक मुद्रा का चित्र, अंकित हो गया उस पर। उन्हीं चित्रों को मैंने, रेखांकित किया इन पृष्ठों पर, अनेक छोटी-बड़ी कविताओं में। जब नहीं आ सकोगी कभी, आँखों के सामने। तब इन्हीं कविता रूपी चित्रों को, देखा करूँगा मैं। और करूँगा याद, कभी तुम्हारे अगणित चित्र खींचे थे मैंने। मन की इस फोटो रील पर, ओ विस्मयमयी सुन्दरी!

तुम्हें मेरी बातें कुछ अटपटी कुछ बेतुकी लगती होंगी। लेकिन उनमें जो अर्थ छिपे हैं, वे तुम्हारी अदृश्य रश्मियों के समान ही अन्तर्निहित हैं। तुम्हें मेरी कविताएँ भी, कभी व्यर्थ का प्रलाप लगती होंगी। लेकिन उनमें जो रचनात्मकता है, वह तुम्हारे निजी व्यक्तित्व के समान ही सारगर्भित है। अब तुम्हीं बताओ, मैं ऐसी बातें कुछ और करूँ? ऐसी ही कविताएँ कुछ और रचूँ?

तुममें परिपक्वता है, जो प्रशंसा से इतराती नहीं है। तुममें सहजता है, जो सुन्दरता की दासी नहीं है। तुममें शालीनता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। तुममें सौजन्यता है, जो सभी को सुलभ है। तुम्हारा नाम दोहराकर, जीवन में ज्योति का अनुभव होता है। तुम्हें सामने देखकर, कोई स्वप्न साकार होने लगता है।

रात-भर सोचता रहा। और तुम्हें लेकर, करता रहा तरह-तरह की कल्पनाएँ। सोचा अगर तुम कुछ समय पहले मिली होती, तो बात ही कुछ और होती। तब तुम्हारे पास समय होता, और मेरे पास अवसर। फिर मैं तुम्हारे व्यक्तित्व पर, तुम्हारी सजीव प्रेरणा से, एक पूरा काव्य रच सकता था। अगर तुम कुछ वर्षों पहले मिल चुकी होती, तो मेरे साथ तुम्हारी सलग्नता बिना शर्त हो सकती थी। तब मैं लिखता रहता दिन-रात, तुम्हें सामने बिठाकर। बस तुम्हें चारों ओर से हर दृष्टि से समझकर। लेकिन वह सब न हो सका, भाग्य या समय की विडंबना! अभी तो जो है, परिस्थितियों की प्रतिकूलता है। तुम्हारा समय बँटा हुआ है, दाम्पत्य और परिवार में। जो शेष है, वह चला जाता है, नौकरी और घरेलू काम काज में। फिर मेरे लिए बचता ही क्या है, जो तुम मुझे दे सको। ऐसी

तुम सही आईडिया, मैं तुम्हारा [illegible]। लेकिन तुम कोई निर्जीव आईडिया नहीं, जो [illegible] कर था, या [illegible] ही रहता है। तुममें सजीवता है, तुममें [illegible] रहा है। तुममें एक अच्छे आईडिया के, सारे आदर्श गुण होते हुए भी, सहज सा लगता है। इसीलिए मैंने चुना तुम्हें, अपनी सर्जना शक्ति के लिए, सर्वोत्कृष्ट आईडिया। ताकि तुम मुझे प्रेरणा देती रहो निरंतर। और मैं चित्रण कर सकूँ तुम्हारा, अन्यतम। हर कोण से, हर दृष्टि से।

रोज तुम्हारी याद आई। रोज तुमसे मिलने की इच्छा जागी। पर हाय री अनावश्यक विवशताएँ और अनचाही व्यस्तताएँ! सम्भव नहीं हो पाई, घड़ी-दो घड़ी की मुलाकात तक। मुलाकात के अभाव में, केवल लेखन का ही सबल था। कल्पना में तुम्हारे चित्र को साकार किया। और उसमें रंग-बिरंगे रंग, शुरू कर दिए भरने। जो कुछ रचा गया, प्रस्तुत है सामने। देखो अनुमान करो, कितनी ज्यादा याद आई। कितनी अधिक मिलने की इच्छा जागी!

परिचय अब आगे बढ़ चुका है। प्रेरणा अब होने लगी है पैदा, पहले से कहीं ज्यादा। प्रेरणा से आगे क्या होगा, प्राप्ति या पीछे प्रस्थान? यों अंततः प्रस्थान, हर मनुष्य की नियति है। लेकिन समय से पूर्व प्रस्थान, दुर्भाग्य की निशानी। दूसरी ओर, मंजिल की प्राप्ति के पश्चात् वापसी का प्रस्थान, प्रसिद्धि का चरम बिन्दु। मुझे अन्त में प्रसिद्धि मिलेगी या

गुमनामी का अंधेरा ? तुम्हारी नजरो मे मैं चोटी पर चढ़ूँगा, या फिसल कर किसी गहरे गर्त मे गिरूँगा, पहले से कौन जानता है ? गीतेश्वर कृष्ण के अनुसार, 'मेरा धर्म है कर्म'। उसका फल मिले या न मिले, पर मन को सतोष मिलेगा, कि मैंने कुछ किया तो। अपना जीवन यो ही नहीं गँवाया, उसे ज्यादा नही तो थोडे समय, जैसे चाहिए वैसे जिया तो।

रात-भर रिमझिम बरसात हुई, यानी मौसम प्रतिकूल होने लगा। सवेरे तुमसे मिलने का जब यत्न किया, तो नए-नए विघ्न पडे। अतत तुम्हारे पास पहुँचा, लगा एक मजिल पा ली। अब कुछ देर शांति से बैठ सकता हूँ। कुछ देर अपने फेफडो मे जीवनदायिनी वायु भर सकता हूँ। साँस खींची, पास से तुम्हारी स्वच्छ काया की गध महसूस की। लगा वाता-वरण मे सुगध है, मौसम की प्रतिकूलता के बावजूद।

बहुत सारी चर्चाएँ हुई। जीवन, दर्शन, काव्य पर बातें हुई। तुमने मेरी सभी बातो को, ध्यानपूर्वक गभीरता से सुना। फिर सोचा और समझा भी। विचार-विमर्श, चिंतन-मनन करते हुए, तुम्हारी गभीर मुद्रा को देख पाना, एक और नया रोमाच था मेरे लिए। प्रस्ताव किया मैंने, क्यो नही तुम लिख डालती एक शोध-प्रबध ? और प्राप्त कर लेती, पी-एच० डी० की उपाधि।

तुम्हें पी-एच० डी० का प्रस्ताव अधिक नहीं भाया। क्योंकि तुम ...लता की हामी हो, जटिलता की नही। तुम्हे हल्की-फुल्की बातें ...हैं, गभीर विवेचन नही। मैं भी कभी-कभी, अपने बोझिल विचारों ...उबा देता हूँ। और तुम कुछ ही देर बाद, विषय बदलना चाहती हो। ...रता को दूर कर, बेहद सरलता से, केवल मुसकाना चाहती हो। ...भी एक कारण है, कि मैंने तुम्हें खींचना चाहा अपनी दिशा ...चचल सरिता को ही गभीर समुद्र खींचता है अपनी ओर। ...चल सरिता, तुमने उत्साह है स्वच्छ निर्झर या पहाडी नदी ...नी दुनिया नहीं देखी, जितनी देखकर आदमी बन जाता है ...है। लेकिन चचल सरिता को भी एक दिन, अपनी ...मुद्र मे समाना होता है। यही प्रकृति का विधान है, यही

त्रिकिरण गाथा

बमरौली में बम नहीं बनते थे। लेकिन हवाई अड्डे पर वायुसेना के, अनेक बम-वर्षक विमान, खड़े रहते हैं हैंगरों में।

हवाई अभ्यास या प्रदर्शन के लिए, वहीं से करते थे वे टेक-आफ। और मँडराने लगते थे आकाश में।

मैं उन दिनों था बमरौली में, एक सरकारी नौकरी में। अपनी शामों के खालीपन को भरने के लिए, मैं भी चाहता था भरना कल्पना की उड़ानें। पर उड़ानों के लिए जरूरत होती है जिस 'टेक-आफ' पट्टी की, वह दिखती नहीं थी आसपास।

एक दिन अचानक वांछित पट्टी मुझे मिल गई। और मैंने शुरू कर दीं इच्छित उड़ानें। कभी ऊपर कभी नीचे। कभी आगे कभी पीछे। कभी आड़ी कभी तिरछी। कभी चक्राकार कभी भँवरदार। भरता रहा मैं आकाश में, उड़ानें बादलों के पार। कई बार मैंने, मुट्ठियों में बन्द कर ली, रोशनी की किरणें। ताकि वे औरों तक न पहुँच सकें।

उन दिनों धरती पर मैं, उतरना ही नहीं चाहता था। लेकिन हर हवाबाज को ऊँची से ऊँची उड़ान के बाद (आसमान में हवाई करतब दिखलाने के बाद) धरती पर आना होता है।

मैं भी जब लौटा जमीन पर तो वह जमीन थी दिल्ली की। बमरौली तब पीछे छूट चुकी थी। बस उनकी वे यादें मौजूद थीं, जो मैंने अंकित कर रखी थीं, एक मामूली नोट-बुक में।

जब से देखा, [illegible] थी। उन [illegible] हुई उस दिन, जिस दिन तुमसे साक्षात्कार हुआ।

[illegible] परिचय में बदला, फिर परिचय और बढ़ा। [illegible] और भी [illegible] सकता हूँ। [illegible] कुछ किसी [illegible] भी कर सकता हूँ।

[illegible] हुई तो [illegible] कुछ देर बाद बैठकर [illegible] यही एक विषय है हमारी, [illegible]

तुम एक आदर्श फोटोग्राफिक माडेल बन सकती थीं। क्योंकि तुम्हारा चेहरा सुन्दर और दृढ़ [illegible] है। पर तुम एक आदर्श साहित्यिक या काव्यात्मक माडेल बन चुकी हो। क्योंकि तुम्हारा चेहरा [illegible] भावुकता और दृढ़ और प्रेरणादायक है।

मैंने तो चुना तुम्हें, अपनी कविताओं का प्रेरणास्रोत। यह कुछ यों ही नहीं है अकस्मात। उसके पीछे मेरे अनुभवों द्वारा है और सार्थक सृष्टि। कितनी नायिका से मिला हूँ मैं। युवतियों और बालाओं, दोनों वर्गों से किए हैं अनगिनत साक्षात्कार। पर वह ज्योति और भावात्मकता, नहीं किसी एकमात्र अवसर। जो सहृदय कवि साहित्य लिखने को, कर देती है बाध्य।

बम्बई-दिल्ली जैसी महानगरियों में, अनेक आधुनिक नागरियों को मैंने देखा-भाला, समझा-समझाया। पर आधुनिकता के साथ-साथ, जो चाहता हूँ समन्वय भारतीय का। यह नहीं मिल सका तुम्हारा-सा। अस्तु बन चुकी हो तुम मेरे लिए, साहित्यिक या काव्यात्मक माडेल। तब तक के लिए, जब तक कोई विघ्न नहीं पड़ता।

सामने बिठाकर तुम्हें देखा घंटों लगातार लगन से काम करते। काम करते समय तुम्हारी मुद्रा कितनी प्रभावी थी, कितनी चित्ताकर्षक।

आभास हुआ तुम नहीं हो, एक मूर्ति मात्र दर्शनीय। कर्मयोगिनी हो तुम। कर्मरत तुम्हारे दोनों सुचिक्कण रोमरहित बाहु, लगते हैं कमल-नाल जैसे। उन्हीं पर टिका तुम्हारा चेहरा, शोभित है पूर्ण विकसित कमल-सा।

से आ रही थी। रोकने व निरट पाने की लालसा में हम सबने एकसाथ उन्हें हाथ हिलाया तथा रुकने की आवाज लगाई।

कार एक पल को बहुत धीमे हुई, शायद ड्राइवर ने ब्रेक लगाई हो। लेकिन तभी पीछे की सीट से किसी नारी का कठस्वर फूट पड़ा था—"ऐसे अँधेरे में क्यों रोकते हो ड्राइवर? पता नहीं कौन गुंडे-बदमाश हों।"

उस समय डा० अग्रवाल को पक्का विश्वास होने लगा कि उस कार में जरूर वही छात्राएँ रही होंगी, तभी तो उन्होंने अपनी गाड़ी नहीं रुकने दी। यह लड़कियाँ, होती ही ऐसी हैं—अकेले में नाचेंगी, लेकिन कोई भेद खुलने का खतरा हो तो पवित्रता की मूरत बन जायेंगी।" वह हाथ नचाकर कहता रहा था और हम लोग उसे कुरेदते रहे थे और हाँ, सबसे ज्यादा अफसोस तो डा० अग्रवाल, डॉ० वशिष्ठ तथा डॉ० श्रीवास्तव के साथ-साथ हमारे कृपाशंकर को भी, इस बात का हो रहा था कि वे लोग उस दिन एक टार्च साथ में क्यों नहीं लाये। टार्च पास में होती, तो उसकी रोशनी में वे कम से कम कार का नम्बर तो नोट कर ही लेते। नम्बर मालूम होने पर बाद में कार की (तथाकथित) मालकिन का नाम-ठिकाना भी मालूम हो सकता था। हो सकता था, जरूर हो सकता था।

इस पर मैंने पूछा—"नाम-ठिकाना मालूम हो भी जाय तो फिर आप लोग करते क्या?"

"करते क्या खाक"—डॉ० श्रीवास्तव ने समापन-सा करते हुए कहा, "अच्छा अब यह बताओ कि आज का दिन तो इस मौज-मजे में बीत ही गया, लेकिन कल आखिर किस नई जगह जाकर देखने-घूमने का प्रोग्राम है?"

"प्रोग्राम तो होटल पहुँचकर डा० वशिष्ठ ही बनायेंगे—क्योंकि यह चौदह साल पहले भी यहाँ आ चुके हैं।" किसी ने रिमार्क कसा था और फिर हा-हा, हू-हू व ठहाकों का एक शोर-सा उठ खड़ा हुआ।

होटल पहुँचकर, जहाँ तक मुझे मालूम है सभी ने अपनी-अपनी हफ्ते-भर से छोड़ी हुई बीवियों को चिट्ठियाँ लिखी थीं तथा सुबह मीटिंग शुरू होने से पहले ही लैटरबक्स के हवाले कर दी थीं। शायद उन्हें डर था कि अगर पोस्ट करना इस समय भूल गये तो फिर रात होने तक याद नहीं आयेगी।

वैषम्य

मेहमान आने शुरू हो गये है। परसो तक, जो बचे है वे भी आ जायेंगे। और तब इस छोटे से मकान मे मंजुला कोई एकाकी स्थान खोज सकेगी, इसमें उसे सदेह है। जब अभी ही यह हाल है कि औरतो के गाने-बजाने और बच्चो के रोने-चीखने मे अतर करना मुश्किल हो रहा है, तो उन दि तो शायद अपनी ही आवाज पहचानना असभव हो जायेगा। जाने कहाँ-कहाँ से आये परिचित-अपरिचितो का मेला-सा इकट्ठा हो रहा है और मंजुला को डर है कि इस 'भाँति-भाँति के जन्तु' वाले मेले मे कही गुम न हो जाये।

की कमजोरी के बारे मे बताकर, शायद ठीक नही किया। राजेश्वर तो इस अवसर पर यहाँ होगा भी नहीं, इसलिए उसके बारे मे पुष्पा को बता देने मे कोई हानि नही थी, लेकिन विजय की स्थिति इससे भिन्न है। उसे तो स्वय उसने भी अलग से पत्र डाला है और सपरिवार आने की विनती की है। उम्मीद है वह आयेगा भी और तब कहीं पुष्पा उससे कुछ कह न बैठे।

समय जब काफी बढ गया, तो मजुला ने समाधान कर लेना उचित समझा। पुष्पा को पुन बुलाकर कहा, "एक वचन दोगी ··?"

"क्या ?"

"यही कि अगर विजय और उसकी पत्नी यहाँ आये तो तुम· तो तुम उनसे क्या कहोगी ··?" मजुला घबडाहट मे अपना अभिप्राय स्पष्ट न कर पाई।

"मैं कहूँगी विजय बाबू स्वय तो विवाह करके बैठ गये, एक बच्चा भी पैदा कर लिया···अब इस बारे मे कुछ हमारी मजुला को भी सिखा दो ··" पुष्पा की आँखो मे शरारत थी।

लेकिन मजुला पर प्रभाव उल्टा हुआ। हँसी के स्थान पर सहसा, उसके चेहरे के ऊपर उदासी की एक और परत चढ गई। डूबे स्वर मे बोली, "कह लो तुम जो भी चाहो ·मैं बुरा मानकर भी क्या कर लूंगी।"

सुनकर पुष्पा एक पल को मौन हो गई। फिर मानो उसने निर्णय के स्वर मे कहा—"मेरा मतलब यह नहीं था। और न मैं चाहूँगी ही कि मेरी कोई बात तुम्हारा दिल दुखाने का कारण बने। · लेकिन मैं पूछती हूँ, तुम इतनी 'अबला' क्यो हो गई हो ? क्या तुममे इतनी भी शक्ति नहीं, कि अपनी बर्बादी का विरोध कर सको ? आखिर तुम यह शादी रुकवा क्यो नहीं देती ?" फिर आगे बोली—"तुम चाहो, तो मैं कह दूँ ताई जी से ? तुम्हारे माँ-बाप भी आखिर है तो माँ-बाप ही, कसाई थोडे ही है। तुम कहती हो वह तहसीलदार साहब का पुत्र ··क्या नाम है ?· राजेश्वर ·· स्वय ही तुमसे प्रस्ताव कर चुका है, तो फिर क्या दिक्कत है ? ·· मैं कहती हूँ, अगर तुममे साहस हो, तो इसी लग्न मे राजेश्वर के साथ तुम्हारे फेरे हो सकते है···हो तैयार ?" उत्तेजना के कारण पुष्पा की कनपटियाँ काँपने

रही थी। मुलाक़ात पर उसके इस समय पर्याप्त [illegible] थी।

लेकिन मंजुला ? मंजुला बेचारी की दशा और भी दयनीय हो उठी। जीवन में मंजुला पहले [illegible] थे, अब तो आवेश को नियन्त्रण में रखने के प्रयास में कुछ भी अवरुद्ध हो गया और हिचकियाँ-सी शुरू हो गईं। [illegible] बातचीत के माध्यम से, बीच-बीच में यह बड़ी कठिनाई से पुष्पा [illegible] वस्तुस्थिति को सुस्पष्ट कर सकी। और इस प्रकार अब में, जो कुछ पुष्पा समझ सकी उसका सार यह था : मंजुला अपनी ओर से राजेश्वर को भी उतना ही [illegible] करती है जितना अपने अविवाहित भावी पति को। उसने अपनी [illegible] में एक पुरुष विशेष अर्थात् विजय को ही पसन्द किया है, और अब भी उसके प्रति, पूर्व की भाँति ही रागात्मक भाव का अनुभव करती है। यह एक अजब दुर्भाग्य की बात है, कि विजय अब उसे नहीं मिल सकता। वह पहले ही विवाह कर चुका है।…

क्यों कर लिया विजय ने किसी अन्य से विवाह ? इस प्रश्न का उत्तर मंजुला को अभी तक ठीक-ठीक नहीं मालूम।

दोनों ही रात पुष्पा ठीक से सो न सकी। मंजुला की दशा तो मरणासन्न रोगी जैसी थी ही, लेकिन पुष्पा को उसकी चिन्ता ने अधमरा कर दिया। देखा जाये तो वैसे भी मरीज से ज्यादा तकलीफ उसके तीमारदार को होती है।…पुष्पा बेचारी को क्या पता था कि जिस बहन की शादी में सम्मिलित होने के लिए वह बहुत अनुनय करने पर 'वार्डेन' से छुट्टी ले पाई थी और अपनी दस दिन की पढ़ाई की भी हानि करने को तैयार हो गई थी, उस बहन के साथ उसे उसके दुःख में भी भागीदार होना पड़ेगा।

कैसी विडम्बना है।… पुष्पा ने सोचा, जीवन में पहला-पहला तो यह अवसर मिला था कि अपने निकट के किसी की शादी को नजदीक से देख सकूँ, सो उसमें ही इतनी सारी अड़चनें। स्वयं अपने विवाह के प्रति तो उसे बहुत आशाएँ पहले भी नहीं थीं, लेकिन अच्छी-खासी आकर्षक मंजुला के साथ इस क्षेत्र में ऐसा अन्याय हुआ होगा, यह उसने स्वप्न में भी न सोचा था। अब यहाँ आकर उसे जो मालूम हुआ है, उससे वह इस कारण भी परेशान हो उठी है, कि पता नहीं स्वयं उसके भाग्य में क्या बदा है। यह

रही है, कि अभी तो वह पढ़ ही रही है · डाक्टरी का कोर्स पूरा करने में ही तीन वर्ष और बीत जायेंगे। लेकिन इनके बाद वहाँ तो कोई सहारा ढूंढना ही होगा · 'लेडी डाक्टर्स' की अपने देश में काफी कमी है, अत. मनचाही नौकरी तो मिल ही जायेगी लेकिन क्या मनपसंद साथी भी मिल सकेगा। यह अवश्य है कि देखने में वह मंजुला जैसी सुन्दर नहीं · अवस्था के अनुसार से वह लम्बी अधिक और 'विकसित' कम है। लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि उसे पूर्णत· 'निष्काम' हो जाना चाहिए।

जब तक विजय नहीं आया था पुष्पा को उम्मीद थी कि कदाचित आ जाने से मंजुला की दशा कुछ सुधरे। किन्तु आज सवेरे ही विजय आ गया है—एक अदद फूहड़ बीवी और एक सुन्दर-सा बच्चा साथ लेकर, पर तब से 'फिट्स' की संख्या में और वृद्धि हो गई है। मूर्ख संबंधी और अर्ध माता-पिता समझते है, हमारी बेटी बहुत 'लाजवती' है बेचारी उसे घर छूटने का बहुत दु.ख हो रहा है, इसीलिए दौरे पड़ रहे है। मुहल्ले की औरतें कहती है—"हाय बेटी! कुछ तो खा-पी ले। कुछ तो अपनी काया का खयाल कर, नहीं तो मामू के जाकर कैसे 'सत्त' निभायेगी? अरे तू तो रो रही है·· हे-हे लल्ली, ऐसे रोती जाओगी तो कैसे पार पाओगी। तुम्हारी माँ बेचारी का दिल भी फिर कैसे काम में लगेगा · कुछ तो सब्र करो, तनिक जी कड़ा करो।" उन अकल की मारियों को क्या पता कि जब यत्न करने पर भी मन, समझौता स्वीकार नहीं कर पाता तभी आँखें उसकी बेबसी पर रोने लगती है।

पुष्पा ने देखा, विजय सामने से बच्चे की अंगुली पकड़े गुजर रहा है। परिचय वह उससे प्राप्त ही कर चुकी थी, अत उठकर दरवाजे तक आई और पुकारा—"सुनिये ··"

विजय अपने द्विवर्षीय पुत्र को पेशाब कराने 'बाथरूम' की ओर लेजा रहा था। आवाज सुनकर वह रुक गया और मुड़कर बोला—"कहिये · "

पुष्पा तब तक आगे बढ़कर समीप आ गई थी। बच्चे के गाल को सहलाते-सहलाते पूछा—"कहाँ ले जा रहे है इसे?"

"तनिक इसकी छोटी-सी शंका अर्थात् लघुशंका, निवारण हेतु।" —विजय मुसकराया।

अभिप्राय समझकर पुष्पा के होंठ भी थोड़े फैल गये। बोली—"यह सब काम भी आपको ही करने पड़ते हैं फिर धर्मपत्नी क्या करती रहती है?"

विजय ने इस बात का कोई उत्तर तुरन्त ही देना आवश्यक नहीं समझा। बच्चे की निकर खोलकर पहले उसे निवृत्त कराया, फिर पूर्ववत् मुस्करा कर बोला—"यह प्रश्न आप मुझसे क्यों पूछती हैं? उन्हीं" को 'ऑबजर्व' करके देखिये न।"

बच्चा बाहर चलने के लिए हाथ से इशारा करने लगा, अतः विजय ने उसे "अभी चलते हैं" कहकर समझाया।···पुष्पा को जैसे कोई भूली बात याद आ गई, पूछा—"आप थोड़ी देर में बाजार की तरफ जायेंगे क्या? शाम को 'जयमाला' के वास्ते एक बढ़िया सुनहरी हार मँगाना है। साथ में एक छोटा हार भी लेते आइयेगा—वर की ओर से वधू के वास्ते भी तो जरूरत होगी।"

"तो वर और वधू, दोनों के लिए 'हारों' की व्यवस्था आप ही को करनी है?"—फिर वही मनोहारी मुसकान।

"बात करने का ढंग कोई आपसे सीखे।···लेकिन ध्यान से यह काम कर अवश्य दीजियेगा, नहीं तो नाई जी 'ऐट दि इलेवेन्थ आवर' मुझी पर बिगड़ेगी।" पुष्पा ने चलते-चलते फिर याद दिलाई।

"आपका यह वाला काम मैं अवश्य कर दूँगा· अब आप निश्चिन्त रहें···" विजय ने फिर चुटकी ली—"लेकिन आप भी मेरा एक अत्यावश्यक काम कर सकेंगी?···आप 'मेडिकल' की स्टुडेंट हैं, मेरी पत्नी को 'परिवार नियोजन' के फायदे समझा देंगी?···देखिये, परेशान न होइये "इस संबध में यह जरूरी नहीं है कि आप आज की तारीख से ही यह काम निबटा दें, लेकिन कर अवश्य दें, दो-एक दिन में···प्लीज।"

उनके जाने के बाद बहुत देर तक पुष्पा सोचती रही, कि इस पुरुष में आखिर ऐसी कौन-सी खास बात है? और मंजुला इसकी खातिर, पता नहीं कब से समर्पिता बनी बैठी है।···दोपहर बाद कमरे के पर्दा की दरी पर लेटकर यही सब सोचते-विचारते उसने नींद की कमी को पूरा किया।

दारात दूसरे शहर से बस द्वारा आई थी और उसे एक धर्मशाला

की दूरी पर स्थित धर्मशाला में ठहराने की व्यवस्था थी। विजय को जैसे ही आने का समाचार मिला, वह कपड़े पहनकर घर से निकल पड़ा। पहले तो बाजार जाकर दो सुन्दर-सी 'जयमालाएँ' खरीदीं, फिर एक चक्कर धर्मशाला का लगा लेना जरूरी समझा। स्वभावतः ही उसके मन में लालसा थी कि देखें जिस लड़की ने किसी सीमा तक स्वयं मुझे अपनी ओर आकृष्ट किया, उसका होने वाला पति कैसा है। लेकिन उसे बड़ी निराशा हुई यह देखकर कि बारातियों के बीच वर महोदय को अलग से पहचानना ही मुश्किल है। पूछने पर पता चला, वह नाई से हजामत बनवा रहे हैं। विजय उस ओर गया और कुछ दूर खड़े होकर उनके रंग-ढंग देखता रहा। 'शेव' कराकर उन्होंने जाँघिया पहन खुले में स्नान किया और फिर तौलिया लपेट कर बड़े कमरे में आ गये। विजय सोच ही रहा था कि अब मौका अच्छा है, अपना नाम-पता बताकर कुछ बातचीत की जाये कि तभी वे शीशे में शक्ल देखकर बाल काढ़ते-काढ़ते किसी से कहने लगे, "अजीब हैं यह लोग···नाई भेजा तो ऐसा कि चार जगह से गाल काट दिया और चमार व धोबी, किसी का पता ही नहीं। अब कौन तो पालिश करे और 'प्रेस' भी कहाँ से हो।···" बात करते समय वह कुछ इस ढंग से मुँह बना कर घृणा व्यक्त कर रहे थे कि विजय को अपना इरादा बदल देना पड़ा। वरना निश्चित था, विजय उत्तर में कुछ कहता और बात बढ़ जाती।

लौटते समय विजय सोचता रहा कि आखिर क्या देखा है मंजुला के माता-पिता ने इस लड़के में। सूरत से कार्टून और शील में भौंकिया पहलवान तो है ही, मिजाज भी कुछ कम तेज नहीं। अपने आपको इस वक्त किसी शहजादे से कम थोड़ी समझ रहे होंगे जनाब। बेचारी मंजुला? जब मिलेगी इन महोदय से, तो क्या बीतेगी उस पर? लेकिन कौन जान सकेगा बाद में, कि 'हरीश बुक डिपो' के प्रोप्राइटर की धर्मपत्नी अपने [illegible] को [illegible] प्यार नहीं, वरन् नफरत करती है।

[illegible] है कि कोई पैसे की सहायता से [illegible] नहीं बना सकता। स्वयं अपना [illegible] लोदित सीखना में महसूस कर रहा

है कि वह किस बुरी तरह से टूट गया था। मैना ने जिस लड़की को जिन्हीं शब्दों में आघात कर दिया था, उसी को पिताजी ने उसके गले बांध दिया, सिर्फ़ रुपयों के लालच में ही तो। उसका दोष उस समय सिर्फ़ इतना था कि वह अपने पैरों पर नहीं खड़ा हो पाया था और पिताजी ने 'मैं किस मुँह से उन्हें ना करूँ' कहकर उसकी भावनाओं को निजी स्वार्थ के लिए भरवा दिया था। काश! उस समय वह भी इतना सामर्थ्यवान हुआ होता कि मैना की तरह स्वयं भी स्पष्ट शब्दों में कह सकता—'जो लड़की बहुत ही कम पढ़ी-लिखी है, वह मानसिक रूप से मेरे स्तर के अनुकूल हो ही नहीं सकती···मैं उससे विवाह नहीं करूँगा।' बहुत कुछ यही तो मंजुला के 'केस' में हो रहा है। मंजुला कतई नहीं चाहती कि उसकी शादी किसी बिजनेस मैन' से हो—भला कोई व्यापारी, पैसों को कमाने की बजाय भावुक पत्नी के साथ क्यों समय नष्ट करने लगा···और यही शायद इस विवाह के प्रति उसकी अनिच्छा का एक बड़ा कारण भी है। पुष्पा बता रही थी, कई दिन से दौरे पड़ रहे हैं, लेकिन उस बेचारी को भी क्या मालूम कि इन दौरों के मूल में अवचेतन का आक्रोश ही है और कुछ नहीं···वह तो शायद अपने अधकचरे डाक्टरी ज्ञान के आधार पर हिस्टीरिया या ऐसी ही किसी और बीमारी की कल्पना उसमें कर रही होगी।

घर आकर उसने देखा उसकी जाहिल पत्नी बच्चे को बुरी तरह पीट रही है, तो उसका चित्त और भी खिन्न हो गया। बात शायद यह थी कि बच्चा आँगन में गिर गया और वह कपड़े सने देखकर माँ के पास जाकर रोने लगा। माँ ने देखा तो बजाय उसका कष्ट समझने के, पीटना शुरू कर दिया और लगी बड़बड़ाने—"खुद तो पता नहीं कहाँ चले जाते हैं··· यहाँ न कपड़े पहनने के रहे न चोटी-बिन्दी के। कुछ ढंग का कभी पहनो भी, तो यह दुष्ट ऊपर चढ़ बैठता है और मिनटों में सब मिट्टी।" विजय को ताज्जुब हुआ कि दूसरी बहुत-सी औरतें भी उसकी पत्नी की हाँ-में-हाँ मिला रही हैं।

बच्चे ने जैसे ही पिता को देखा, 'पापा-पापा' पुकारता व रोता हुआ आया और विजय की टाँगों से लिपट गया। विजय को अचानक बड़ा तरस

हो आया और उसकी आँखों के कोर न हो गये। लेकिन बड़ी सावधानीपूर्वक उसने अपने आप को सँभाल लिया और पत्नी से बोला—"लाओ इसके दूसरे कपड़े दे दो···बदल दूंगा। और तुम भी तैयार हो लो, आगत जनवासे से चलने की तैयारी कर रही है।"

खुली छत पर एक ओर ले जाकर वह बच्चे को कपड़े पहना रहा था कि पुष्पा ने आकर बताया—"जयमाल तो आप ले आये हैं···भाभी से मुझे मिल गई। लेकिन अब एक दूसरी दिक्कत आ पड़ी है। समझ नहीं आता, द्वाराचार के लिए मंजुला 'दी को साड़ी कौन-सी पहनाई जाये। सारा, संदूक देख डाला, लेकिन कोई भी उपयुक्त जँचनेवाली साड़ी नहीं दिखी उनके पास।···इधर रोने के कारण उनकी आँखें लाल-सुर्ख हो रही हैं, चेहरे की कांति भी कम हो गई है। अतः और भी जरूरी है कि साड़ी बढ़िया और चमकदार हो तथा 'मेकअप' भी भली प्रकार किया जाये···"

न चाहते हुए भी विजय के होठों पर मुसकराहट आ गई इस 'वक्तव्य' को सुनकर। बनकर बोला, "तो आज्ञा कीजिये पुष्पा जी, मैं इस बारे में आपकी क्या मदद करूँ।"

इस नाटकीयता पर पुष्पा भी हँस दी। फिर बोली—"आपको हँसी की सूझ रही है इस समय भी। मैं कहती हूँ, समय कम है 'जल्दी से कोई साड़ी दिलवाइये न, भाभी से कहकर।"

"अवश्य-अवश्य।" विजय जानता था उसके कहने से पत्नी कभी भी साड़ी देने को तैयार न होगी। कहेगी—"मैं क्यों तह खराब करूँ अपनी कीमती साड़ी की।" लेकिन पुष्पा के प्रस्ताव को एकदम टाल देना भी ठीक नहीं। और असलियत बताई नहीं जा सकती·· पता नहीं इससे क्या सोचेगी यह दाम्पत्य-संबंधों के बारे में। आखिर कुछ तो उपाय करना ही चाहिए···मंजुला को कामदार साड़ी पहने मैं भी तो देखूँ, कैसी लगती है··

प्रकट में उसने पुष्पा से कहा, "तुम यहीं रुको जरा बब्लू के पास, मैं साड़ी लेकर आता हूँ तब तक।" फिर नीचे जाकर पत्नी से चाबी का गुच्छा माँगा और, अपने कपड़े निकालने के बहाने। पुनः पत्नी से कहा कि वह तब तक बब्लू को देखे बाहर जाकर ··वहीं पड़ोस के मकान में न चला

या हो। और जैसे ही पत्नी गई, उसने झटपट सन्दूक खोलकर लगन वाली साड़ी निकाल ली। तुरन्त ही उसने दूसरा सदूक खोलकर अपने कपड़े निकाले। इतने में पत्नी बदहवास-सी लौट आई और कहा—"बब्बू पड़ोस में तो है नहीं।"

"अच्छा तुम रुको यहाँ, मैं खोजता हूँ" कहकर वह तेजी से उठ खड़ा हुआ। नजर बचाकर उसने साड़ी को कुमरार्ट की ओट मे पहले ही कर लिया था।

पुष्पा ने साड़ी देखते ही पसंद कर ली। अपने वक्ष पर रखकर नीचे तक फैलाती हुई बोली—"सचमुच इसे पहनकर मजुला 'दी' खिल उठेंगी। ···लेकिन आप इसके मेल के ब्लाउज तो लाये ही नहीं। खैर, मैं उसे स्वयं माँग लूँगी नीचे जाकर। मेरा ख्याल है भाभी का ब्लाउज मंजुला 'दी' के 'फिट' आना चाहिये·· वह मेरी जैसी सीकिया थोड़े है···"

विजय अब सचमुच के सकट मे फँस गया। यह लड़की अब नीचे जाकर पत्नी से ब्लाउज माँग बैठेगी और सब गुड़ गोबर कर देगी। रुककर बोला—' तो क्या आप समझती हैं, मैं ब्लाउज लाना भूल गया ? अरे भई, मैंने खुद इसके साथ के ब्लाउज की माँग की थी, लेकिन उन्होंने कहा कि वह अभी तक सिला नहीं है।···वह कहती हैं ब्लाउज तो इस साड़ी पर कोई भी हो, अच्छा लगेगा। और मैं भी कि ब्लाउज अपना ही पहनना चाहिये···उसमे 'फिटिंग' बढ़िया रहती है···

बात पुष्पा की भी समझ मे आ गई और वह तुरत साड़ी लेकर नीचे भाग गई मजुला के पास। इधर विजय ने बच्चे को गोद मे उठाया और नीचे आकर पत्नी से बोला—"यह छत पर पहुँच गया था···वहाँ पुष्पा के पास खेल रहा था।"

बारात जब द्वाराचार को आई तो रात के दस बज रहे थे और छोटे बच्चे जो इन्तजार मे शाम से ही बाहर पड़ी कुर्सियो पर बैठे थे ऊँघने लगे थे। लेकिन जैसे ही उनके कानो मे ढोलो की ढम-ढम पड़ी, वे पुन. चैतन्य हो गये। अन्दर मकान मे तो मानो भूचाल ही आ गया हो। सबकी सब औरतें और लड़कियाँ अपनी-अपनी रुचि के विषयो की चर्चा बन्द करके आँगन मे होती हुई द्वार की ओर तेजी से भागी। उनमे से कुछेक को भीड़

मे परेशानी महसूस हुई, तो वे छत पर जा चढ़ी और लगीं दूर तक देखने। पास-पड़ोस की छतें भी तब तक औरतों-बच्चों से भर गई थी और उन सबों की इस समय एक ही इच्छा थी।...एक नज़र दूल्हे मियाँ को देख तो लें।

औरतों मे हलचल देख और बारात को आया जान विजय की माताजी भी पूजा छोड़ कर उठ बैठी। फिर आकर मजुला की माँ के बराबर मे खड़ी हो गई, और चौकी पर बैठे हुए वर पर दृष्टिपात कर रस्मी तौर से बोली—"लड़का तो अच्छा देखा दुल्हन तुमने...माँ-बाप है ?

"सो सब हैं जिज्जी। माँ-बाप, भाई-बहन तुम्हारी दुआ से कमी किसी बात की नहीं। बहुत बड़ा काम है इन लोगो का, लड़के के नाम से एक किताबों की दुकान है सो अलग। अपनी तरफ से सभी कुछ देखा है, आगे मजू की किस्मत रही।...और वैसे भी अपनी सतान का भला कौन नहीं चाहता।" मजुला की माँ ने सहमति की आशा से उनकी ओर देखा।

और उन्होने भी उन्हें निराश नहीं किया। स्वीकारात्मक ढग से सिर हिलाती हुई बोली—"सो तो है ही दुल्हन। अब तुम जानो हो, पहले इसी बहू से प्रकाश की तय हुई थी, लेकिन बाद को प्रकाश ने, न मालूम किस सनक मे पड़कर मना करवा दी। जानती हो हमने क्या किया ? फौरन ही दूसरे लड़के का रिश्ता मजूर कर लिया।...फिर करी तो है प्रकाश ने शादी अपनी पढ़ाई किसी लड़की से। दो साल हो गये, कोई आसार नहीं... विजय की बहू के देख लो, साल भीतर ही बब्बू आ गया था पेट मे।"

पुरोहित जी तब तक कुछ 'मत्र' पढ़कर 'स्वागत' का कार्य सपूर्ण कर चुके थे। अपनी भर्राती आवाज़ मे बोले—"अब कन्या को बुलाकर जय-माला वगैरह डलवानी हो, तो डलवा दो।"

पुष्पा के साथ कुछ अन्य छोटी-बड़ी लड़कियाँ, मजुला को साथ लिवा-कर आई और स्वागत-गीत गाने लगी। मजुला एक पल को ठिठकी फिर आगे बढ़कर कांपते हाथो से जयमाला उनके गले मे डाल दी। चारों ओर से एकसाथ तालियाँ बज उठी और एक ओर से कैमरे ने भी 'क्लिक' की। प्रत्युत्तर मे दूल्हे मियाँ ने भी हाथो को आगे बढ़ाकर, दूसरी माला मजुला को पहना दी, तुरन्त ही कैमरे ने पुनः एक बार 'क्लिक' की तथा उसकी

और से फेंके गये तीव्र आलोक में मंजुला का मुखड़ा पल-भर को चाँद-सा दीपित हो उठा।

कुछ दूरी पर खड़ी [illegible] की पत्नी ने अब पहचानी अपनी साड़ी। पहले उसे कुछ शक जरूर हुआ था, लेकिन फिर सोचा, उस जैसी दूसरी भी तो हो सकती है। किन्तु इस समय तो सन्देह का प्रश्न ही नहीं था।··· फोटो खींचने की तेज रोशनी में उसने स्पष्ट देख लिया था, यह उसी की साड़ी है। पल्लू के एक कोने पर कत्थे का पूर्व परिचित धब्बा उसे साफ दीख गया था।···उसके तन में आग-सी लग गई। आखिर यह साड़ी इन तक पहुँची कैसे? जरूर इन्होंने ही दी होगी। और वह भी मुझसे बिना बताये!

जानकी इस समय अपने आपे में नहीं है। उसे लग रहा है उसके इर्द-गिर्द कोई भयानक षड्यन्त्र चल रहा है और वह उसमें फँस चुकी है। 'अब समझी'—है वह सोचती—'शादी में चलने के लिए क्यों इतना जोर दिया गया था। मैंने कहा भी, माताजी जाने को तैयार है ही फिर हम लोग चल-कर क्या करेंगे, पर श्रीमान जी क्यों मानते। कह दिया, हम लोग भी चलें तो अच्छा है···घूमना ही हो जायेगा···और मंजुला के पिता जी मुझे मानते भी बहुत हैं···वर्षों तो एक ही मुहल्ले में पास-पास रहे हैं हम लोग [illegible]।···लेकिन अब असली भेद खुला कि कौन किसे मानता है। [illegible] वरना यह तो शायद [illegible]। लानत है ऐसी नीयत पर!"···अचानक जानकी के सर में इतना [illegible] दर्द होने लगा कि वह ऊपर चली गयी और फर्श पर बिस्तर बिछाकर कपड़े बदले बिना ही सोने का उपक्रम करने लगी।

लेकिन आँखों की नींद तो गायब हो चुकी थी। वस्तुतः ईर्ष्या की आग में उसका शरीर इस बुरी तरह जल रहा था कि मन होने लगा, इस आग से औरों को भी फूँक दे। उसे लग रहा था कि इसी समय उठकर नीचे चली जाये और चीखकर कहे—'लौटा ले जाओ यह बारात···' तो शायद कुछ चैन पड़े। 'आखिर क्या समझा है इन मरदों ने'—वह पुनः सोचने लगी—'हम औरतें क्या गुलाम हैं इनकी, जब चाहा अपना

लिया, जब चाहा झिड़क दिया। ''लेकिन शायद कमजोरी हमी लोगों की है''जितना यह चाहते हैं उतना दब क्यों जाती हैं ? अब सोचो, यह तो हो ही नहीं सकता कि यह मि० विजय तो दूसरों के साथ ऐश करें और मैं देखती रहूँ। आखिर ब्याहता हूँ, कोई भगाई हुई तो नहीं। · ऐसा ही दिमाग था तो बड़े भाई की तरह खुद भी इनकार कर दिया होता। यह क्या बात हुई कि पहले तो पैसे के लालच में शादी रचा लो और बाद में लड़की बेचारी को बेवकूफ बनाते रहो। ऐसे लोगों को तो कोई तेज-तर्रार मिले, तो अक्ल ठिकाने आये ''।'

वहीं से बब्बू के रोने का स्वर जानकी के कानों में पड़ा और विचार-प्रवाह यहीं रुक गया। 'इस मरे को भी तो चैन नहीं उसके बिना' बड़-बड़ाती हुई वह उठी और बच्चे को दूसरे बालकों के मध्य से उठा लाई। क्रोध में तड़ातड़ उसके दो थप्पड़ लगाये और बिस्तर पर लिटा दिया। पुन. कुछ दूसरा खयाल आ गया और वह रोते बच्चे को सीने से लगाकर स्वयं भी रोने लगी।

बारातियों के बाद घरवालों को खाना खिलाया गया और इस सबमें बारह बजने को आये। पुरोहित जी ने भाँवरों का मुहूर्त प्रातः चार बजे का बताया था, अतः यह निश्चित हुआ कि दूल्हा यहीं रुक जाये। विजय ने देखा, सारे बाराती जनवासे चले गये हैं, उधर वाले भी बहुत रात बीती जानकर अपने-अपने लिए लेटने की जगह तलाश करने लगे हैं, अब कुछ देर पहले भरा-पूरा पण्डाल अब खाली-खाली-सा लग रहा है। अभी-अभी यहाँ कितना जमघट था। लाउडस्पीकर के शोर में एक-दूसरे से बोलना तक मुश्किल था, लेकिन अब कितना सन्नाटा-सा है। सारी पड़ी बिखरी कुर्सियाँ, लम्बी-लम्बी मेजों पर मुड़ी-तुड़ी चादरें जिन पर जगह-जगह सब्जियों के धब्बे पड़ गये हैं, और इन सबके [illegible] हटकर [illegible] अकड़कर बैठा हुआ एक दिन विशेष का 'बादशाह'। सब मिलाकर कितना जुगुप्सापूर्ण लगता है।

सहसा पुष्पा ने आकर पूछा—'क्या आप खाना खा चुके हैं ?'

''हाँ-हाँ। और तुमने [illegible]'' [illegible]

बजाय 'तुम' से बात करना उसे इस समय बड़ा ही अनौपचारिक और सुखप्रद लगा।

"ठीक भी…।" उत्तर देते समय पुष्पा और पास खिंच आई—"अच्छा, आपको हमारे जीजाजी कैसे लगे?" प्रश्न करते समय आँखों से नव दम्पती की ओर संकेत किया।

"सुन्दर।" उत्तर देते समय विजय की समझ में आया कि वह इसके अतिरिक्त और क्या कहे। कुछ रुककर बोला—"तुम्हारा क्या खयाल है…?"

"ठीक है…।" इस बार वह स्वयं ही सकपका गई।

"तुम्हारी मजुना 'दी' को पसन्द आये?"

"मैंने पूछा नहीं…" पुष्पा अब गंभीर थी।

विजय अब क्या पूछे? कुछ देर वह भी खोया-सा रहा, फिर बोला—"तो अपने जीजाजी से ही पूछ लो कि जीजी कैसी लगी।"

पर पुष्पा ने शायद इस कथन पर ध्यान न दिया। इशारा करती हुई बोली—"ये इतने तनकर क्यों बैठे हैं?"

"वे संभवतः नाराज हैं इस बात पर, कि उनकी साली ने उनसे अब तक बात क्यों नहीं की।" कहकर विजय मुसकराया।

"चलिये…आप तो मुझे ही बनाने लगे।" पुष्पा ने मीठा उलाहना दिया।

"वाह! इसमें बनाने की क्या बात है। किसी भाग्यवान की ऐसी अच्छी साली, जो 'मीठी' भी हो और 'नमकीन' भी, अगर किसी अपरिचित आदमी से बात करे, तो क्या उसे बुरा न लगेगा? झूठ मानती हो, तो देख लो—वे हमीं को घूर रहे हैं।"

पुष्पा ने चोर नजरों से उधर देखा। दूल्हा मियाँ, सचमुच कुछ परेशान-से, कुछ नाराज-से, इधर ही देख रहे थे।…पुष्पा से अधिक न सहा गया। बात बदलते हुए कहा—"आज सोने का इरादा नहीं है क्या? भाभी तो, पता नहीं, कब सोने चली गयी…"

"अच्छा।"—विजय मानो चलते-चलते गिर पड़ा।

"चलिये, हम लोग भी अब चलें…" सुनने से विजय को मानो कुछ

आभार लिया।

उसी समय पुष्पा के 'डैडी' बाहर आये और बोले—"अब आकर तो सोओ, बेटी···नहीं तो बीमार पड़ जाओगी। फिर वर महोदय के समीप आकर कहा, "और आराम से बैठिये न। या अच्छा हो, पलंग पर बिस्तर लगता है—लेटकर आराम कीजिये। अभी तो तीन-चार घंटे बाकी हैं···"

'नहीं, मैं ठीक बैठा हूँ। बल्कि अच्छा हो आप मेरी चिन्ता छोड़कर अपनी सुविधाओं का खयाल करें···"

सुनकर पुष्पा से न रहा गया। चलते-चलते विजय से बोली—"आखिर यह रूठे किस बात पर हैं?"

"पता नहीं···" विजय ने कहा और साथ हो लिया। अन्दर पहुँचकर पुष्पा कोने के कमरे में जाने लगी, तो विजय ने भी झाँककर देखा। कमरे में हल्के पावर का बल्ब जल रहा था और कुछ औरतें-बच्चे फर्श की दरी पर इधर-उधर लेटे सो रहे थे। एक ओर कोने में मंजुला मूर्तिवत् घुटनों के बीच सर किये बैठी थी। शायद रो रही है—सोचकर, वह भी संकोच छोड़ अन्दर घुस गया।

मंजुला को संभवतः ऐसी आशा न रही हो। कितने आश्चर्य की बात थी कि जिस विजय से बहुत कुछ कह डालने को वह कई दिन से बेचैन थी, वही विजय अब सामने था। लेकिन अब वह इस समय, इतने लोगों के बीच फँसी होकर, कहे भी क्या? और दुःख की गहनता क्या वास्तव में कोई कहने की चीज है? समझने वाला हो, तो क्या मौन में सब कुछ नहीं समझ सकता।···सोचती हुई वह चुप ही बनी रही।

और विजय भी इस समय क्या कहता?···बधाई। नहीं, यह तो बड़ा हास्यास्पद लगेगा।···रो क्यों रही थी? भला, यह कोई पूछने की बात है।··· परेशान-सा विजय पास रखे बक्से पर बैठकर निरुद्देश्य-सा इधर-उधर देखने लगा। और ऊपर से आती 'सीलिंग फैन' की हवा के बावजूद भी उसे पसीना छूटने लगा।

शायद पुष्पा को भी कुछ घुटन महसूस हुई थी। उसी से उबरने के खयाल से बोली—"चलो मंजुला 'दी' छत पर चलकर कुछ देर आराम कर लो।"

"नहीं, मैं ठीक हूँ···तुम सोओ।" और इस संक्षिप्त वाक्य के बाद वातावरण में पुनः स्थिरता आ गई।

तभी विजय ने देखा, घर की कोई 'बहू' दरवाज़े पर आकर लौटने लगी। शायद उसका इस समय यहाँ 'लड़की' के पास बैठना घरवालों की आँखों में खटक रहा है।···सोचकर वह उठने लगा, कि मंजुला बोली—"यह साड़ी रखी है, लेते जाइये···"

"पुष्पा के सुपुर्द कर दो···फिर ले लूँगा।" उसने अब अधिक रुकना फज़ूल समझा।

छत पर कुछ सुझाई नहीं देता। सम्भवतः, अँधेरा पक्ष है, और सीढ़ियों की रोशनी खराब है, इस कारण से आज मेहमानों की संख्या भी तो अधिकतम पर पहुँच गई है और उनमें से जिनको भी नीचे पड़ी खाटों पर जगह नहीं मिली वे सब इस समय छत पर पड़े हैं।···विजय वैसे ही काफी परेशान था, यह दृश्य देखकर और भी कुढ़ गया। प्रत्येक विस्तर के पास जाने और सोये हुओं के चेहरों पर झुककर पहचान करने में उसे अच्छी-खासी कसरत करनी पड़ी और तब कहीं, अलग हटकर तीसरे कोने में पत्नी की शक्ल दिखाई दी।···वह बच्चे को बीच में करके बैठ गया और आहिस्ते से पूछा—"क्या सो गईं···?"

जानकी कुछ ही देर पहले सो पाई थी। अब पति का स्वर सुनकर पुनः जाग गई और कुछ कहने ही जा रही थी कि विजय ने पूछा—"चाबी का गुच्छा कहाँ रखा है?···कपड़े बदलकर सोऊँ।"

इस वाक्य ने मानो बाण का काम किया। तिलमिलाती हुई बोली, "मुझे नहीं मालूम।"

विजय ने समझ लिया, अवश्य कुछ गड़बड़ है। पर इस समय विवाद करना बेकार होगा, सोचकर उन्हीं कपड़ों से लेटा रहा। अब जो हो, कल देखूँगा, सोचकर उसने मुख दूसरी ओर घुमाकर, पीठ पत्नी की ओर कर ली। तदुपरांत नेत्र बन्द करके नींद लाने की कोशिश करने लगा।

तभी किसी की पदचाप सुनाई दी। विजय ने नेत्र खोलकर देखा—अँधेरे में पुष्पा की लंबोतरी आकृति पास आती मालूम दी। और अगले ही क्षण उसकी स्वरलहरी भी सुनाई दी—"क्या आप लोग सो गये?"

"नहीं तो···आओ" —विजय ने सोचा, शायद यह अगले कार्यक्रम के बारे में बताने आई है।

पुष्पा घूमकर विजय की ओर गई और पास बैठती हुई बोली—"मुझे तो नींद आ नहीं रही। सोचा, जब तक भाँवरें शुरू हों, तब तक आप लोगों के पास ही बैठूं।···अरे, भाभी तो सो रही हैं।"

सुनते हुए भी जानकी ने कोई जवाब न दिया। विजय से उसकी यह मक्कारी छिपी न रही, अतः मन ही मन कहा—'खुराफाती औरत!' ऊपर से बोला—"नींद तो अभी मुझे भी नहीं आ रही।·· नीचे क्या हो रहा है?" वह चाहता था मंजुला के बारे में पूछे, लेकिन साफ-साफ क्यों कर पूछ सकता था।

"कुछ भी तो नहीं।···शायद अभी भाँवरों के शुरू होने में कुछ समय लगेगा।"···पुष्पा सोचने लगी, यह इस समय इनके पास क्यों आई?

कुछ देर तक यों ही इधर-उधर की बातें होती रहीं। अंत में, हाँ-हूँ करते-करते विजय का जी अलसाने लगा और आँखें झपकने लगीं। फल-स्वरूप उसने पुष्पा को सुझाव दिया कि चाहे, तो वह भी तब तक यहीं लेट रहे। पुष्पा मान गई और उसकी चादर को तकिये की भाँति सर के नीचे रखकर बराबर में लेटकर बातें करने लगी। बातें शुरू में साधारण विषयों यथा फिल्म, राजनीति और देश की दुर्दशा के बारे में ही थीं। फिर पश्चिमी देशों के बारे में चर्चा चली और वहाँ के स्वच्छन्द-वातावरण एवं आर्थिक सम्पन्नता पर बहस होने लगी।

पुष्पा ने किंचित् रोष से कहा—"पता नहीं अपना भारत देश उनकी बराबरी को कब पहुँचेगा···?"

"लेकिन तुम पूरी तरह से उनके कदमों पर ही क्यों चलना चाहती हो? क्या यह अच्छा न होगा कि अपने देश और समाज के लिए हम स्वयं ऐसी नीति अलग से निर्धारित करें जो हमारे अनुकूल हो और हमारी ही उपज हो···" विजय को लगा कि वह किसी उपदेशक की तरह बोलने लगा है, अतः संशोधन किया—"मेरा मतलब यह है कि हमारे युवक-युवतियों में दृढ़ता अधिक हो और वह किसी दूसरे के बनाए रास्ते पर न चलकर स्वयं निश्चय करें कि उन्हें किधर जाना है।" कहने का

विजय चुप हो गया पर लगा बात पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाई।
पुष्पा ने भी शायद 'वक्तव्य' की कमज़ोरी भाँप ली, पूछा—"दृढ़ता से आपका अभिप्राय क्या है आखिर ? प्रायः यहाँ के लड़के-लड़की सोचते कुछ है और विभिन्न दबावों-प्रलोभनों में फँसकर करते कुछ और हैं—क्या यही दृढ़ता है ?"

विजय के ऊपर यह सीधी चोट थी।…वह आहत हो गया। लेकिन फिर यह सोचकर कि यह तो यों ही कह दिया है (आखिर इसे मेरे बारे में पता भी क्या ?), उसने अपने को तुरन्त सँभाल लिया। ऊपर से कहा—"सिद्धान्ततः मैं कहूँगा जो ऐसा करते हैं, वे गलत करते हैं।…और यह निश्चित है कि गलती का दण्ड भी उन्हें मिलता ही है किसी न किसी रूप में। कुछ न सही तो पश्चाताप के रूप में ही…" अंतिम वाक्य कहते समय, वह न चाहते हुए भी कुछ भावुक हो आया।

पुष्पा को उसकी यह 'स्वीकृति' अच्छी लगी। सहानुभूति से भरकर उसने अब भरपूर नज़र से विजय को देखा तो वह उसे वास्तव में दया का पात्र लगा।…फिर यह दिखाने के लिए कि वह उसकी बातों को बिलकुल न समझे, वह उसके और पास हो गई और लगभग फुसफुसाकर कहा—"आपकी मिसेज़ जाग तो नहीं रहीं ?…कहीं वे हम लोगों पर संदेह करें…।"

विजय के नासापुटों में किसी सुगंधित 'हेयर आयल' की गंध भर गई। लेकिन यह गंध तो सुपरिचित-सी थी। 'क्या इसने भी मंजुला का ही केश-तैल इस्तेमाल किया है आज… ?" सोचने से पृष्ठभूमि में छूट गई मंजुला पुनः सामने के पर्दे पर आ गई…अँधेरे में जड़बुद्धि-सा कुछ देर तो वह उसे निहारता रहा, फिर उसका मन प्यार करने को मचल उठा।…और सचमुच ही कुछ देर तक उसे बिलकुल ही ध्यान न रहा कि जिस 'प्रेमिका' के सामीप्य → आनन्द वह केश सूँघकर या हथेलियाँ दबाकर लेने लगा है, वह वास्तव में मंजुला नहीं

और बाद में मीने
मंजुला की बहन
जानकी
भी आखिर

यह अंतिम सीमा थी। सोने का नाटक
समय उसका मन हुआ कि वह पूर-

कर रोये या जोर से चीख पडे। लेकिन उसे स्वय आश्चर्य था कि वह भी कर क्यो नही पा रही।···क्यो वह निर्जीव-सी पडी है इस तरह ? न्त मे किसी प्रकार उसने अपनी सारी शक्ति से जोर लगाया और कर खडी होने मे सफल हो गई।

पुष्पा-विजय तो यकायक सकते मे आ गये। जैसे किसी ने गहरी नींद मे झँझोडकर जगाया हो ऐसे वे, भेद-भरी दृष्टि से एक-दूसरे को ताकने गे। सोचने और बोलने की उनकी सारी शक्ति, मानो पूरी तरह से लुप्त हो गई थी। भौचक्के से वे, एक-दूसरे से कुछ कहना चाहते थे, पर शब्द नही मिल रहे थे।···जानकी भी एक पल को यो ही मूर्तिवत् खडी रही कर 'बाथरूम' की ओर चल दी।

[illegible] उपयुक्त अवसर मिल गया।

[illegible]

के वापस आने पर बिना कुछ कहे-सुने जीने की ओर चल दिया।

विजय यह तो समझ गया पर उसकी बात पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाई।

पुष्पा ने भी शायद 'बयान' की कमज़ोरी भाँप ली, पूछा—"इस में आपका अभिप्राय क्या है आखिर ? प्रायः यहाँ के लड़के-लड़की मौका कुछ है और विभिन्न दावों-प्रलोभनों में फँसाकर करते कुछ और है—क्या यही दुहराना है ?"

विजय के ऊपर यह सीधी चोट थी।...वह आहत हो गया। लेकिन फिर यह सोचकर कि उसने तो यों ही कह दिया है (आखिर इसे मेरे बारे पता भी क्या ?), उसने अपने को तुरन्त सँभाल लिया। ऊपर से कहा—"सिद्धान्ततः मैं कहूँगा जो ऐसा करते हैं, वे गलत करते हैं।...और यह भी निश्चित है कि गलती का दण्ड भी उन्हें मिलना ही है किसी न किसी रूप में। कुछ न सही तो पश्चात्ताप के रूप में ही..." अंतिम वाक्य कहते समय, वह न चाहते हुए भी कुछ भावुक हो आया।

पुष्पा को उसकी यह 'स्वीकृति' अच्छी लगी। सहानुभूति से भरकर उसने अब भरपूर नज़र से विजय को देखा तो वह उसे वास्तव में दया का पात्र लगा।...फिर यह दिखाने के लिए कि वह उसकी बातों को शिकायत न समझे, वह उसके और पास हो गई और लगभग फुसफुसाकर कहा—"आपकी मिसेज़ जाग तो नहीं रहीं ?...कहीं वे हम लोगों पर संदेह करें...।"

विजय के नासापुटों में किसी सुगंधित 'हेयर आयल' की गंध भर गई। लेकिन यह गंध तो सुपरिचित-सी थी। 'क्या –
केश-तैल इस्तेमाल किया है आज...?" सोचने
मंजुला पुनः सामने के पर्दे पर आ गई..."
वह उसे निहारता रहा, फिर उसका मन
और सचमुच ही कुछ देर तक उसे वि
'प्रेमिका' के सामीप्य का आनन्द वह
और बाद में सीने से लगाकर लेने ल
मंजुला की बहन है...।"

जानकी की सहनशीलता की य
भी आखिर वह कब तक निभाती। इ

"मंजुला, तुमने मुझे खास तौर से जरूर-जरूर बुलाया था।…कुछ कहना चाहती हो?"

"क्या कहूँ"—मंजुला के स्वर में दार्शनिकता-सी थी—"जयमाल और फिर भाँवरों के फोटो तो आपने खींच ही लिए हैं…"

'यह क्या बात हुई।'—विजय ने सोचा। प्रगट में कहा—"हाँ-हाँ 'फोटोज' के 'रिप्रिंट्स' मैं शीघ्र ही तुम्हें भेजूंगा। कुछ 'पोज़िज़' तो, मुझे उम्मीद है 'ऐक्सिलेंट' आये हैं। और कहो… मेरा मतलब है अपने 'हसबेंड' के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है? पसंद आये…?' कहते-कहते उसने मंजुला की हथेली को हल्के से दबाया।

एक जोड़ी बड़ी-बड़ी आँखें ऊपर को उठीं और तत्काल ही फिर झुक गईं। एक पल ही के उस दृष्टि-विनिमय में मानो उन्होंने अपनी समस्त अन्तर्निहित पीड़ा और अवसाद को शब्द दे दिये। और आश्चर्य यह कि वे शब्द इतने शक्तिशाली थे कि उनका उत्तर 'मौन' हो गया। विजय को स्वयं विस्मय हुआ, उसे हो क्या गया है, जो आगे बात नहीं कर पा रहा। ऐसा तो पहले, कभी भी कहीं पर नहीं हुआ।

…वह द्वार की ओर देखने लगा। फिर धीरे-धीरे बोला [illegible] मुझसे कोई भूल हो गई हो, तो क्षमा कर देना। अब न मालूम कब भेंट हो। हो सके, तो पत्र-व्यवहार जारी रखना…"

मंजुला पूर्ववत् सुनती रही। विजय का हृदय जो [illegible] हो उठा और मौका मिलते ही उसने मंजुला की हथेली को खींचकर [illegible] चूमा, पुन: गाल और आँखों से स्पर्श कराया। मन हुआ [illegible] भींचकर अधरों को भी चूम ले। प्रगट में कहा—"[illegible] है। यह [illegible] वाली साड़ी तुम अपने साथ ले जाना और [illegible] …इसी बहाने मेरी याद आ जायेगी।"

विकिरण गाथा

बमरोली में बम नहीं बनते थे। लेकिन हवाई अड्डे पर वायुसेना के, अनेक
बम-वर्षक विमान, खड़े रहते हैं हैंगरो में।
हवाई अभ्यास या प्रदर्शन के लिए, वहीं से करते थे वे टेक-आफ।
और मंडराने लगते थे आकाश मे।
मैं उन दिनो था बमरोली मे, एक सरकारी नौकरी में। अपनी शामो
के खालीपन को भरने के लिए, मैं भी चाहता था भरना कल्पना की
उडानें। पर उडानो के लिए जरूरत होती है जिस 'टेक-आफ' पट्टी की,
वह दिखती नही थी आसपास।
एक दिन अचानक वांछित पट्टी मुझे मिल गई। और मैंने शुरू कर
दी इच्छित उडानें। कभी ऊपर कभी नीचे। कभी आगे कभी पीछे
कभी आडी कभी तिरछी। कभी चक्राकार कभी भँवरदार। भरता रह
मैं आकाश मे, उडाने बादलो के पार। कई बार मैंने, मुट्ठियो मे बन्द क
ली, रोशनी की किरणे। ताकि वे औरो तक न पहुँच सकें।
उन दिनो धरती पर मैं, उतरना ही नही चाहता था। लेकिन हर
हवाबाज को ऊँची से ऊँची उड़ान के बाद (आसमान मे हवाई करतब
दिखलाने के बाद) धरती पर आना होता है।
मैं भी जब लौटा ज़मीन पर तो वह ज़मीन थी दिल्ली की। बमरोली
तब पीछे छूट चुकी थी। बस उसकी वे यादें मौजूद थी, जो मैंने अंकित
कर रखी थी, एक मामूली नोट-बुक में।

तुम्हें देखकर याद आता है, बहुत पहले देखा कोई चेहरा। वह तुमसे आकार-प्रकार में भी, इतना साम्य रखता था जितना आचरण-व्यवहार में

उस चेहरे की आँखें, इतनी ही बड़ी और भावुक थी, जितनी कि तुम्हारी। और चेहरे पर जड़े होंठ, ऐसे ही तराशे हुए थे जैसे तुम्हारे।

बातचीत करते हुए वह चेहरा भी, तुम्हारी तरह आत्मीय था। और सामने वाले को, इसी तरह कर देता था आत्म-विभोर!

किसी को देखकर, किसी दूसरे की यादें क्यों ताजी हो उठती है? शायद व्यक्ति-व्यक्ति में, कुछ भीतरी साम्य होता है।

अपरिचित व्यक्ति भी कभी-कभी, परिचय के दौरान, पूर्व-परिचित लगने लगता है। किसी भीतरी साम्य से ही तो'।

सारी औपचारिकताएं छोड़कर, किसी अजनबी के सामने, कभी-कभी मन को खोलना, कितनी शांति दे जाता है। शायद किसी समानता के कारण ही।

इस कल्पनातीत ब्रह्मांड में, अगणित किरणें है। पर एक 'किरण' अति सूक्ष्म और अन्तर्यामी है, यह पहले मालूम न था।

ऐक्स-किरण जैसे, ऊपरी आवरण भेदकर, भीतर का चित्र उतार लेती है। वैसी ही सशक्त किन्तु साकार, एक और 'किरण' भी है, यह पहले मालूम न था।

किरणें प्रकाश देती हैं। वह एक 'किरण' रोमांच का प्रस्फुटन है, यह पहले मालूम न था।

स्वच्छ धवल दंत-पंक्ति। कँटे-छँटे नियंत्रित केश। चेहरे पर आभा और अरुणाई। ऐसे रूप पर, अनावश्यक हैं प्रसाधन या भांति-भांति के फैशन।

जितनी बार मैं तुमसे मिलता हूँ, तुम्हारा नया रूप निखरता है। हर बार एक नया रहस्य, अंकुर की तरह उजागर हो जाता है।

पहले कहाँ जानता था मैं। तुम एक सजीव प्रेरणा ही नहीं, स्वयं कविता सदृश हो। मधुर, कोमल और लयात्मक!

घर से दफ्तर, दफ्तर से घर आने-जाने की जो बोरियत थी। उसकी एकरसता टूटी उस दिन, जिस दिन तुमसे साक्षात्कार हुआ।

साक्षात्कार परिचय में बदला, फिर परिचय और बढ़ा। अब घर से दफ्तर, दफ्तर से घर की बजाय मैं कहीं और भी जा सकता हूँ। दफ्तरी एकरसता को तोड़कर, कुछ निजी चर्चाएँ भी कर सकता हूँ।

तुम्हारी भी अगर थोड़ी भी एकरसता भंग हुई हो मेरे परिचय से। घर से दफ्तर, दफ्तर से घर का माहौल बदला हो अगर, कुछ देर साथ बैठकर बतियाने से। तो यही एक विजय है हमारी, अपने प्रश्नवाची परिवेश पर।

तुम एक आदर्श फोटोग्राफिक माडेल बन सकती थी। क्योंकि तुम्हारा चेहरा सुन्दर और देह सानुपातिक है। पर तुम एक आदर्श साहित्यिक या काव्यात्मक माडेल बन चुकी हो। क्योंकि तुम्हारा चेहरा अति भावप्रवण और देह अति प्रेरणाप्रद है।

मैंने जो चुना तुम्हें, अपनी कविताओं का प्रेरणा-स्रोत। वह कुछ यों ही नहीं है अकस्मात। उसके पीछे मेरी अनुभवी दृष्टि है और सार्थक सृष्टि। कितनी नारियों से मिला हूँ मैं। गृहिणी और कामकाजी, दोनों वर्गों से किए हैं अन्तरंग साक्षात्कार। पर वह ज्योति और भावात्मकता, नहीं दिखी एकसाथ अन्यत्र। जो सहसा कविताएँ लिखने को, कर देती है बाध्य।

बम्बई-दिल्ली जैसी महानगरियों में, अनेक आधुनिक नागरियों को मैंने देखा-भाला, समझा-समझाया। पर आधुनिकता के साथ-साथ, जो चाहता हूँ समन्वय आत्मीय का। वह नहीं मिल सका तुम्हारा-सा। अस्तु बन चुकी हो तुम मेरे लिए, साहित्यिक या काव्यात्मक माडेल। तब तक के लिए, जब तक कोई विघ्न नहीं पड़ता।

सामने बिठाकर तुम्हें देखा घंटों लगातार लगन से काम करते। काम करते समय तुम्हारी मुद्रा कितनी प्रभावी थी, कितनी चित्ताकर्षक!

आभास हुआ तुम नहीं हो, एक मूर्ति मात्र दर्शनीय। कर्मयोगिनी हो तुम। कर्मरत तुम्हारे दोनों सुचिक्कण रोमरहित बाहु, लगते हैं कमल-नाल जैसे। उन्हीं पर टिका तुम्हारा चेहरा, शोभित है पूर्ण विकसित कमल-सा।

मेरा मन है फोटो रील। तुम्हारी प्रत्येक मुद्रा का चित्र, अंकित हो गया उस पर। उन्हीं चित्रों को मैंने, डेवलप किया इन पृष्ठों पर, अनेक छोटी-बड़ी कविताओं में। जब नहीं आ सकोगी कभी, आँखों के सामने। तब इन्हीं कविता रूपी चित्रों को, देखा करूँगा मैं। और करूँगा याद, कभी तुम्हारे अगणित चित्र खींचे थे मैंने। मन की इस फोटो रील पर, ओ किरणमयी सुन्दरी!

तुम्हें मेरी बातें कुछ अटपटी कुछ बेतुकी लगती होंगी। लेकिन उनमें जो अर्थ छिपे हैं, वे तुम्हारी अदृश्य रश्मियों के समान ही अन्तर्निहित है। तुम्हें मेरी कविताएँ भी, कभी व्यर्थ का प्रलाप लगती होंगी। लेकिन उनमें जो रचनात्मकता है, वह तुम्हारे निजी व्यक्तित्व के समान ही सारगर्भित है। अब तुम्हीं बताओ, मैं ऐसी बातें कुछ और कहूँ? ऐसी ही कविताएँ कुछ और रचूँ?

तुममें परिपक्वता है, जो प्रशंसा से इतराती नहीं है। तुममें सहजता है, जो सुन्दरता की दासी नहीं है। तुममें शालीनता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। तुममें सौजन्यता है, जो सभी को सुलभ है। तुम्हारा नाम दोहराकर, जीवन में ज्योति का अनुभव होता है। तुम्हें सामने देखकर, कोई स्वप्न साकार होने लगता है।

रात-भर सोचता रहा। और तुम्हें लेकर, करता रहा तरह-तरह की कल्पनाएँ। सोचा अगर तुम कुछ समय पहले मिली होती, तो बात ही कुछ और होती। तब तुम्हारे पास समय होता, और मेरे पास अवसर। फिर मैं तुम्हारे व्यक्तित्व पर, तुम्हारी सजीव प्रेरणा से, एक पूरा काव्य रच सकता था। अगर तुम कुछ वर्षों पहले मिल चुकी होती, तो मेरे साथ तुम्हारी सलग्नता बिना शर्त हो सकती थी। तब मैं लिखता रहता दिन-रात, तुम्हें सामने बिठाकर। बस तुम्हें चारों ओर से हर दृष्टि से समझकर। लेकिन वह सब न हो सका, भाग्य या समय की विडंबना! अभी तो जो है, परिस्थितियों की प्रतिकूलता है। तुम्हारा समय बँटा हुआ है, दाम्पत्य और परिवार में। जो शेष है, वह चला जाता है, नौकरी और घरेलू काम काज में। [illegible] लिए बचता ही क्या है, जो तुम मुझे दे सको। ऐसी

ति में, पल-दो पल का साथ ही निभा पाओ अगर, तो यह उदारता है
ारी।

तुम्हारे लिए मेरे पास कुछ भी नहीं देने को। सिवाय इन कागजो
वताओ या दो मीठे बोलों के। लेकिन हे सुमुखि, ये कविताएं हैं अन-
ल। क्योंकि इनमे हृदय की कसक है, मन की उत्फुल्लता है और
स्तिष्क की उर्वरता है। मेरे लिए तुम्हारे पास बहुत कुछ है देने को। चेहरे
ी सौम्यता, हृदय की पावनता और आत्मा की आत्मीयता। ये सारे गुण
भी है अनमोल। अतः क्यों न हम, एक दूसरे की अनमोल चीजें, बिना
किसी तीसरे को बीच मे लाए, आपस मे बदल लें।

तुम मेरी माडेल, मैं तुम्हारा चितेरा। लेकिन तुम कोई निर्जीव
माडेल नही, जो स्थिर कर दो, तो स्थिर ही रहता है। तुममें सजीवता है,
तुममें गतिशीलता है। तुममे एक अच्छे माडेल के, सारे आदर्श गुण होते
हुए भी, सहज मानवीयता है। इसीलिए मैंने चुना तुम्हें, अपनी सर्जना
शक्ति के लिए, सर्वोपयुक्त माडेल। ताकि तुम मुझे प्रेरणा देती रहो
निरतर। और मैं चित्रण कर सकूं तुम्हारा, अन्यतम। हर कोण से, हर
दृष्टि से।

रोज तुम्हारी याद आई। रोज तुमसे मिलने की इच्छा जागी। पर
हाय री अनावश्यक विवशताएं और अनचाही व्यस्तताएं! सम्भव नहीं हो
पाई, घडी-दो घडी की मुलाकात तक। मुलाकात के अभाव में, केवल
लेखन का ही सबल था। कल्पना में तुम्हारे चित्र को साकार किया।
और उसमे रग-बिरंगे रग, शुरू कर दिए भरने। जो कुछ रचा गया,
प्रस्तुत है सामने। देखो अनुमान करो, कितनी ज्यादा याद आई। कितनी
अधिक मिलने की इच्छा जागी।

परिचय अब आगे बढ़ चुका है। प्रेरणा अब होने लगी है पैदा, पहले
से कहीं ज्यादा। प्रेरणा से आगे क्या होगा, प्राप्ति या पीछे प्रस्थान? यों
अंततः प्रस्थान, हर मनुष्य की नियति है। लेकिन समय से पूर्व प्रस्थान,
दुर्भाग्य की निशानी। दूसरी ओर, मंजिल की प्राप्ति के पश्चात् यानी
का प्रस्थान, प्रसिद्धि का चरम बिन्दु। मुझे अन्त में प्रसिद्धि मिलेगी या

गुमनामी का अँधेरा ? तुम्हारी नजरो मे मैं चोटी पर चढूँगा, या फिसल कर किसी गहरे गर्त मे गिरूँगा, पहले से कौन जानता है ? गोपेश्वर कृष्ण के अनुसार, 'मेरा धर्म है कर्म'। उसका फल मिले या न मिले, पर मन को सतोष मिलेगा, कि मैंने कुछ किया तो। अपना जीवन यो ही नही गँवाया, उसे ज्यादा नही तो थोड़े समय, जैसे चाहिए वैसे जिया तो।

रात-भर रिमझिम बरसात हुई, यानी मौसम प्रतिकूल होने लगा। सवेरे तुमसे मिलने का जब यत्न किया, तो नए-नए विघ्न पड़े। अततः तुम्हारे पास पहुँचा, लगा एक मजिल पा ली। अब कुछ देर शांति से बैठ सकता हूँ। कुछ देर अपने फेफड़ो मे जीवनदायिनी वायु भर सकता हूँ। साँस खीचो, पास से तुम्हारी स्वच्छ काया की गध महसूस की। लगा वातावरण मे सुगध है, मौसम की प्रतिकूलता के बावजूद।

बहुत सारी चर्चाएँ हुई। जीवन, दर्शन, काव्य पर बातें हुई। तुमने मेरी सभी बातो को, ध्यानपूर्वक गभीरता से सुना। फिर सोचा और समझा भी। विचार-विमर्श, चिंतन-मनन करते हुए, तुम्हारी गभीर मुद्रा का देख पाना, एक और नया रोमाच था मेरे लिए। प्रस्ताव किया मैंने, क्यो नही तुम लिख डालती एक शोध-प्रबध ? और प्राप्त कर लेती, पी-एच० डी० की उपाधि।

तुम्हे पी-एच० डी० का प्रस्ताव अधिक नही भाया। क्योकि तुम सरलता की हामी हो, जटिलता की नही। तुम्हे हल्की-फुल्की वार्ताएँ पसद हैं, गभीर विवेचन नही। मै भी कभी-कभी, अपने बोझिल निष्कर्षों से, तुम्हे उबा देता हूँ। और तुम कुछ ही देर बाद, विषय बदलना चाहती हो। गभीरता को दूर कर, बेहद सरलता से, केवल मुसकाना चाहती हो। शायद यह भी एक कारण है, कि मैंने तुम्हे खीचना चाहा अपनी दिशा मे। वस्तुतः चचल सरिता को ही गभीर समुद्र खीचता है अपनी ओर।

ओ चचल सरिता, तुममे उत्साह है स्वच्छ निर्झर या पहाड़ी नदी जैसा तुमने उतनी दुनिया नही देखी, जितनी देखकर आदमी बन जाता है गहरा-गभीर समुद्र। लेकिन चचल सरिता को भी एक दिन, अपनी चचलता छोड़, समुद्र मे समाना होता है। यही प्रकृति का विधान है, यही

आदमी की निधि। कि उस बचपने की चंचलता छोड़, परिपक्वता की
गंभीरता ओढ़ती है।

मेरे पास कैमरा नहीं था पास। होता तो फोटो खींचता रंगीन, तुम्हारे मिट्टी सने हाथों का। पौधा रोपते हुए गमले में घर पर, खींच लेता चित्र तुम्हारी तन्मयता का। लगे हुए काम में, गुलाबी सूट पहने, माथे पर खिंच आई बालों की लटें, जब बना रही थी चेहरे को कमनीय। खींचता चित्र तुम्हारी उस मुद्रा का भी, जब साड़ी पहन आ बैठी मेरे सामने। स्वागतार्थ बनाकर लाई गर्म कॉफी और प्रस्तुत करने लगी सलज्ज।

कभी उधर आफिस में, औपचारिक सत्कार न कर पाने के लिए, चाय या कॉफी न पिला पाने के लिए, तुम क्षमा याचना करती हो। क्यों करती हो ? मैं तो अनायास पा लेता हूँ तुमसे अनौपचारिक सत्कार। पी लेता हूँ तुम्हारे विचारों की मजेदार चाय या सुदर्शन चेहरे के दर्शनों की असाधारण कॉफी। क्या इतना काफी नहीं है ? तुमने दे रखी है अनुमति अपने इतने पास आने की, कि मैं तुम्हारी पारदर्शी आँखों में, झाँक कर देख सकूँ और तुम्हारे हृदय में उमड़ते-घुमड़ते असंख्य भावों में से, कुछ की थाह पा सकूँ।

तुम मेरे प्रति या मेरी योजनाओं के प्रति, पूर्ण संलग्नता प्रगट नहीं करती। यह अच्छा ही है। आखिर तुम्हारी पूर्ण संलग्नता का, मेरा अधिकार क्या है ? तुम अशत: ही मेरे प्रति या मेरी गतिविधियों के प्रति संलग्नता महसूस कर सको। इतना ही पर्याप्त है मेरे लिए।

बच्चे के जन्म के लिए, माता-पिता का मिलन जरूरी है। लेकिन मिलन के उपरांत, समस्त पीड़ा की प्रक्रिया झेलनी होती है माँ को ही। इसी तरह कविताओं के जन्म हेतु, कविता और प्रेरणा का संयोग आवश्यक है। लेकिन संयोग के बाद, बाकी सभी कुछ करना होगा कवि को ही।

अस्तु मेरी प्रेरणा-कामना-वासना ! तुम्हारी जरूरत है मेरे लिए अखण्डत:। यद्यपि मेरी आवश्यकता नहीं होगी तुम्हें, उस संपूर्णता की सीमा तक। हाँ मुझी को सहनी है पीड़ा और व्याकुल रहना है निरंतर सृजन-कर्म ... । तुम नारी हो, अत: समझ सकती हो स्वयं, सृज

दुख और उनकी पीड़ा था। लगभग उसी तरह की पीड़ा और सुख, मिश्रित है मेरे मन में।

तुम्हारे मुखड़े का दर्शन जाने से कैसे प्रकार का अनुभव होता है। तुम्हारी देह दर्शन का मन भी उस प्रकार जैसा है जैसा मिठास और बढ़ जाती है। मानो मिठास ही मिठास है तुममें। इसीलिए वाणी भी मधुर है, वीणा की झंकार-सी। तुम्हारे नाम में जो 'किरण' है वह तो सुनहरी होती ही है मधुर-सी। वाणी नाम में भी मिठास और रूप में भी। फिर क्यों न मैं तुम्हें, प्राप्त कर बसा लेना चाहूँ हृदय और आत्मा में।

तुम्हारे लिए ही मैं गया देखने फिल्म, जो फिल्म मेरी देखी हुई थी। और दुबारा देखने की कोई इच्छा नहीं थी। सुबह कहा था तुमने, तुम भी जाओगी देखने फिल्म। और मुझे फिल्म नहीं, तुम्हें देखना था दुबारा। तुम्हें नजर देख लेने बाद, दुबारा शाम को देखने की इच्छा हो आई थी।

उस फिल्म में पर्दे की नायिका थी स्मिता। उसकी आँखों में शरारत थी तुम्हारी जैसी। वह मुस्काती तो लगता मुसकान है तुम्हारी। यों नायिका बहुत कम देर छा जाई पर्दे पर। पर जब भी आई छा गई पर्दे पर। उसी तरह जैसे तुम, जब होती हो उपस्थित। तो छा जाती हो मेरे अस्तित्व पर। उस फिल्मी नायिका को मैंने, देखा हुआ है बिना फिल्म के भी कई बार। उसके साथ मैंने बातें की हैं और चाय-कॉफी कई बार। पर कभी नहीं लगा, वह छा सकती है (अपने रूप-रंग से) मेरे अस्तित्व पर। तुलना करनी हो तो कहूँगा—'स्मिता केवल अभिनय में गजब ढाती है। पर किरण वास्तव में जादू कर जाती है।'

एक दिन सायंकाल। जा पहुँचा घूमते हुए तुम्हारे आवास तक। गर्मियों के दिन। तुम्हें कोई आशंका नहीं थी, मेरे इस 'सरप्राइज़' की। तुम कर रही थी स्नान, सूचना मिली नौकरानी से। फिर तुम आईं मेरे समक्ष सद्य स्नाता। मैं रह गया देखता तुम्हें, एकटक। तुमने मौन तोड़ा, क्या लेंगे आप? कुछ भी नहीं, बस मिलने आया हूँ, कहा मैंने। लेकिन तुम बना लाईं, कई व्यंजन अपने हाथों। सजा दिए, सामने की टेबुल पर।

चाय पीते-पीते, शोर सुना एक विमान के नीचे उतरने का। मुझे न

विश्वविद्यालय की। ढूंढ पाना एक अदद 'गाइड' का, नहीं था इतना आसान। जिससे भी मिलता, तुम्हें साथ लेकर। पूछता वह, आपकी कौन-सी है क्या? मैं बताता मित्र हैं, तो वह देखता घूरकर ऐसे। मानो मैं बलात्कार करते पकड़ा गया होऊँ। अतत मिल ही गए एक महोदय, जिन्होंने ज़्यादा नहीं पूछा। केवल तुम्हारी सूरत देखकर, गाइड बनने को हो गए तत्पर। उत्साह में आकर उन्होंने, सिनाप्सिस भी कर दिया तैयार। और रजिस्ट्रेशन फार्म भरवाकर, पहली सीढ़ी पार करा दी।

सिनाप्सिस जिस दिन मंजूर हुआ, उस दिन तुम कितने उत्साह में थीं। बोलीं, चलना होगा बाजार, कुछ किताबें खरीदने। लेकिन किताबों की खरीद के बाद, लौटी नहीं तत्काल। रिक्शा किया 'संगम' के लिए। चढ़ाया प्रसाद वहाँ के हनुमान जी को। संगम क्षेत्र में उस दिन रौनक थी। लेकिन तुम रुकी नहीं वहाँ अधिक देर। बोली, अब कोई पिक्चर देखेंगे। मैंने कहा, पुरानी देखनी हो तो मैं बताऊँ? कौनसी, उत्सुकता से पूछा तुमने। मैंने सुझाया, 'झुक गया आसमान'। तुम शरारत से चहकी, 'कहाँ झुका आसमान?' इंगित किया मैंने, 'इन चरणों पर झुका आसमान!'

आकर्षण बढ़ता ही जा रहा है, परिस्थितियों के फासलों के बावजूद। यह मुझे तुम्हारे पास, बहुत ही पास खींच लाया है। इस आकर्षण का मूल कारण क्या था, उसका स्मरण अब महत्त्वपूर्ण नहीं है। अब तो महत्त्वपूर्ण यह परिणाम है, कि मेरा तुम्हारे प्रति आकर्षण है। यह दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

अपने बीज रूप में विशाल वृक्ष भी, अति सूक्ष्म होता है। इस बीज रूप में उसे देखकर, उसके भावी विस्तार का अनुमान नहीं किया जा सकता। लेकिन जब वही बीज धरती में बो दिया जाता है, और अनुकूल मिट्टी-पानी और खाद पा लेता है। तो इसी में कोंपलें फूटने लगती हैं और पौधा विकसित होने लगता है। फिर एक दिन पौधा बन जाता है विशाल वृक्ष। उसकी जड़ें दूर धरती के भीतर गया चुकी होती हैं।

तब वृक्ष को देखकर उसकी जड़ों का या बीज का, कोई नहीं सोचता फिरता। सब कोई केवल वृक्ष को सराहते हैं। इसी तरह का है, यह भाव

और बना दो इसका जीवन जीने योग्य ।

प्रियतम प्रिया, सर्वोत्तम प्रिया । अनुपम प्रिया, अन्यतम प्रिया । नी श्रेष्ठ प्रकार की प्रेयसी जन्मी हैं दुनिया में, उनमें तुम्हीं हो सर्व-ष्ठ, प्रिया !

एक दिन फोन किया तुम्हारे कार्यालय । मालूम हुआ पहुँची ही नहीं । रते-डरते मिलाया घर का नम्बर । मालूम हुआ पड़ी हुई हो बिस्तर पर । रुक न सका, तुम्हारा हाल बेहाल सुनकर । पहुँचा तुम्हारे घर, देखा केली और अस्तव्यस्त ।

मैंने पूछा, बात क्या है ? तुमने कहा, कुछ नहीं । मैंने कहा, तुम्हें मेरी कसम । तुमने कहा, सच आपकी कसम । और गिराने लगीं आँखों से, आँसुओं की लड़ी झर-झर । मैंने तत्काल तुम्हें बाँहों में भर लिया । और चूम-चूमकर आँसुओं को सुखा दिया ।

तुम हो चुकी थीं निढाल । अलग न हटा पाई मुझको । मैंने आगे बढ़कर उठा लिया, तुम्हें जमीन से ऊपर । स्वय भी धीरे-धीरे, 'टेक-आफ' किया धरती से । और वेग से लगा उड़ने, बन्द कमरे के आकाश में ।

जब उड़ान खत्म हुई, तो ऐसी नींद आई कि खुले आकाश में उतरने वाले, ऐरो विमान का शोर, नहीं दिया सुनाई ।

काल-बेल सुनकर, सचेत हुए हम दोनों । मैं भलकर निकला मैं, पिछले दरवाजे से । और तुम बढ़ी आगे, मुख्य द्वार की ओर । घंटी का उत्तर देने, जो तब तक बज चुकी थी कई बार ।

कल मैं गुलाब के बगीचे में जा पहुँचा था । मेरे चारों ओर गुलाब थे—गुलाबी गुलाब ।

गुलाबों का गुलाबी रंग इससे पहले, इतना प्यारा मुझे कभी नहीं लगा था । छोटे गुलाब, बड़े गुलाब, गुलाब की पंखुरियाँ और कलियाँ थीं, मेरे चारों ओर छायी थीं ।

मैं आश्चर्यचकित था । गुलाब का फूल, मेरे लिए इतना सार्थक, कभी नहीं लगा था, जितना कि अब ।

तुम्हारे प्रति आकर्षण। यह बीज कब से किसी एक कारण में रहा होगा। लेकिन बाद में अनेक कारणों से बढ़ता गया, और फैल-फूलकर फल देकर, पूरा वृक्ष बन गया।

तुम भी दुविधा में हो, मैं भी दुविधा में कि आकर्षण को आगे बढ़ने दें, या इसे बीच में ही मोड़ दें।

दुनियादारी की दृष्टि से, आकर्षण का बढ़ना-बढ़ाना, कष्टप्रद और जोखिम भरा है। लेकिन इसी तरह जोखिम-भरे हैं, अन्य बहुत से कार्य भी। जैसे हिमालय की दुर्गम चोटियों पर चढ़ना, या दक्षिणी ध्रुव की बर्फीली यात्रा।

हवाबाज जब हवाई करतब दिखाते हैं, तो उनके लिए जान का खतरा होता है। लेकिन तब भी वे करते हैं हवाबाजी, अपनी जान की बाजी लगाकर।

इसी तरह का रोमांच है आकर्षण में। जो इसमें एक बार फँस जाता है, वह तमाम रुकावटों के होते हुए भी, हार नहीं मानना चाहता। वह आगे ही बढ़ना जानता है।

अस्तु, क्यों न हम अपनी-अपनी, दुविधाएँ त्याग दें। जो भी होगा देखा जाएगा, निश्चय करके निज हृदयों में। जांबाज हवाबाजों की तरह, आकर्षण के करतबों को समर्पित हो जाएँ।

कैंसर का इलाज किया जाता है, किसी ऐक्स-किरण की शक्ति से। मेरे एकाकीपन की कैंसर-ग्रंथि भी, हो जाए अगर नष्ट। मैं हो जाऊँगा पूर्ण स्वस्थ, किरण-उपचार से तुम्हारे। अतः हे किरणमयी! आरम्भ कर दो, चिकित्सा एक रोगी की, कोमल करों के संस्पर्श से। कारण, तुम्हारे करों में अन्तर्निहित है चमत्कारी किरण।

किरण, किरण, किरण! सब ओर किरण ही किरण, दे रही है दिखाई। मानो कोई किरण-जाल, फैला हुआ हो चारों ओर। यों सारा ब्रह्मांड ही किरणमय है। किरण और विकिरण, यानी प्रकाश और उसका संचरण, आवश्यक हैं जीवधारी के लिए। पर मेरे जीवन का अनिवार्य तत्व, प्रकाश-किरण के अलावा, एक और किरण-संयोग में है। अस्तु मेरी अतः किरण, संजीवनी किरण! अब तो अभय दान दो, इस भक्त को अनुरक्त

दो। और बना दो इसका जीवन जीने योग्य।

प्रियतम प्रिया, सर्वोत्तम प्रिया। अनुपम प्रिया, अन्यतम प्रिया। जितनी श्रेष्ठ प्रकार की प्रेयसी जन्मी हैं दुनिया में, उनमें तुम्हीं हो सर्वश्रेष्ठ, प्रिया!

एक दिन फोन किया तुम्हारे कार्यालय। मालूम हुआ पहुँची ही नहीं। डरते-डरते मिलाया घर का नम्बर। मालूम हुआ पड़ी हुई हो बिस्तर पर। मैं रुक न सका, तुम्हारा हाल बेहाल सुनकर। पहुँचा तुम्हारे घर, देखा अकेली और अस्तव्यस्त।

मैंने पूछा, बात क्या है? तुमने कहा, कुछ नहीं। मैंने कहा, तुम्हें मेरी कसम। तुमने कहा, सच आपकी कसम। और गिराने लगीं आँखों से, आँसुओं की लड़ी झर-झर। मैंने तत्काल तुम्हें बाँहों में भर लिया। और चूम-चूमकर आँसुओं को सुखा दिया।

तुम हो चुकी थी निढाल। अलग न हटा पाईं मुझको। मैंने आगे बढ़कर उठा लिया, तुम्हें जमीन से ऊपर। स्वयं भी धीरे-धीरे, 'टेक-आफ' किया धरती से। और वेग से लगा उड़ने, बन्द कमरे के आकाश में।

जब उड़ान खत्म हुई, तो ऐसी नींद आई कि खुले आकाश में उतरने वाले, ऐरो विमान का शोर, नहीं दिया सुनाई।

काल-बेल सुनकर, सचेत हुए हम दोनो। मैं लपककर सिमटा मैं, पिछले दरवाजे से। और तुम बढ़ी आगे, मुख्य द्वार की ओर। घंटी का उत्तर देने, जो तब तक बज चुकी थी कई बार।

कल मैं गुलाब के बगीचे में जा पहुँचा था। मेरे चारों ओर गुलाब थे—गुलाबी गुलाब।

गुलाबों का गुलाबी रंग इससे पहले, इतना प्यारा मुझे कभी नहीं लगा था। छोटे गुलाब, बड़े गुलाब, गुलाब की पंखुरियाँ और कलियाँ ही, मेरे चारों ओर छायी थीं।

मैं आश्चर्यचकित था। गुलाब का फूल, मेरे लिए इतना मादक, कभी नहीं लगा था, जितना कि कल।

नोट-बुक खाली पड़ी है इसके आगे। लेकिन समय नहीं रुका आगे भी। गुज़ार दिए वसन्तों ने किसी तरह, एक-दो नहीं पूरे तीन साल। प्रस्तुत हैं कुछ और प्रसंग, सूचनाएँ।

पूरा किया किरण ने पी-एच० डी० का शोध-प्रबन्ध 'समकालीन परिवेश में भारतीय नारी की स्थिति'। उसमें किए उसने कई सर्वेक्षण, जिनका किया मैंने विश्लेषण। निष्कर्ष जो भी निकले, उनमें संशोधन सुझाए, निजी दृष्टिकोण से।

गाइड महोदय के पास पहुँची जब थीसिस, तो उन्होंने भी कई सुझाव दिए। किरण ने एक दिन बताया स्वयं ही—'गाइड महोदय ने हस्ताक्षर करने में, आनाकानी की थी। थीसिस को वे कुछ दिन, रोक लेना चाहते थे अपने पास। पर मैंने उन्हें विवश कर दिया, साथ ही विशेष निवेदन भी किया। तो उन्होंने बिना पढ़े ही, थीसिस की संस्तुति कर दी।

किरण बनी 'डाक्टर', दिखलाई मैंने पिक्चर। क्योंकि 'उमराव जान' उसी दिन रिलीज हुई थी। पर विचित्र मन स्थिति थी, उस दिन उसकी। तदनुसार हरकतें भी, अजीब ही।

लौटते हुए बोली, 'हर औरत 'उमराव जान' है। जिसके साथ रहती है उसके साथ नहीं होती। जिसके साथ होती है, उसके साथ रह नहीं सकती।' 'लेकिन 'उमराव' को तो तीन-तीन नायक मिले। कितनी खुश-किस्मत थी वह!' कहा मैंने। 'नायक नहीं खलनायक थे,' टोका उसने 'हर बार और अकेला करके, चले गए अपने-अपने रास्ते।'

मैं सिहरा, कहाँ गई नैसर्गिक चंचलता? क्यों अपना ली यह *सामुद्रिक गम्भीरता?* *हँसकर ध्यान हटाने की* चेष्टा की, 'तुम 'उमराव' से तुलना क्यों कर रही? तुम्हारे पास तो चालक पति है, प्रचालक प्रेमी। दो-दो नायक सेवा करने को, पूरी तरह प्रस्तुत हैं *कृतसंकल्प*।'

'तीसरे भी हैं, महामना गाइड महोदय! लेक्चररशिप दिलवाएँगे मुझे।' कहकर किरण ने धारण किया अपूर्व मौन। भूल गई वह अपनी सहज उन्मुक्त हँसी।

यौवन का वरदान, बहुत कम लोगों को मिल पाता है। यह मिलता भी बड़ी मुश्किल से है, तभी जब देवी स्वयं प्रसन्न हो!

मैं उन भाग्यशालियों में हूँ, जिन्हें यौवन वरदान दे चुकी है। मैंने यौवन को इन आँखों देखा है, उसके शरीर को भी महसूसा है। केवल इतना ही नहीं, मैंने यौवन के सारे शरीर को, चुम्बनों से भर दिया है।

यकीन न हो तो, जब कभी यौवन तुम्हें मिले, तुम स्वयं देख लेना। मेरे चुम्बनों का एकाध निशान, उसके शरीर पर तुम्हें, देखने को मिल जाएगा।

मैं किरणमय हो चुका हूँ, क्योंकि किरण-थैरेपी से गुजर चुका हूँ। तुम काव्यमय हो चुकी हो, क्योंकि कविप्रिया बन चुकी हो। मैं चाहता हूँ, यह 'किरणथैरेपी' जारी रहे इसी तरह मुझ पर। और मैं पिघला सकूँ अपनी समस्त ग्रंथियाँ। तुम भी इच्छुक हो, कवि-प्रेयसी के रूप में, आत्मसात कर सको। एक कवि की कोमलतम भावनाएँ, तीव्रतम वासनाएँ और गहनतम आवेग।

हमारे संबंध कितने वैध है और कितने अवैध? यह कानून और समाज की समस्या है, हमारी नहीं। स्वयं हमारी समस्या मात्र इतनी है कि ये वैध या अवैध संबंध (जैसे भी हैं), कैसे इसी प्रकार, आगे भी बने रह सकते हैं।

कितनी बार मैं मिला तुम्हारे घर? कितनी बार तुम मिली मेरे घर? इसके अतिरिक्त गुमनाम होटलों, पार्कों के सुनसान कोनों और दूसरी एकांत जगहों में? कुछ याद है तुम्हें?

याद है एक बार कहा तुमने, 'क्यों न हम उड़ चलें किसी दूसरी दुनिया में?' मैंने पूछा, 'लेकिन तुम्हारी पी-एच० डी० का क्या होगा? और तुम्हारे पति का स्टेटस? पारिवारिक और सामाजिक सुरक्षा? छोड़ सकती हो इन सबको?'

तुम हो गई थीं मौन, और मैं अधिक मुखर, 'मेरे पास है ही क्या सिवाय एक मामूली नौकरी के। मैं तुम्हें आधी सुविधाएँ तक, नहीं दे पाऊँगा।' 'तब ऐसे कब तक?' प्रश्न था तुम्हारी प्रत्येक निःश्वास में।

यौवन का वरदान, बहुत कम लोगों को मिल पाता है। वह मिलता भी बड़ी मुश्किल से है, तभी जब देवी स्वयं प्रसन्न हो!

मैं उन भाग्यशालियों में हूँ, जिन्हें यौवन वरदान दे चुकी है। मैंने यौवन को इन आँखों देखा है, उसके शरीर को भी महसूसा है। केवल इतना ही नहीं, मैंने यौवन के सारे शरीर को, चुम्बनों से भर दिया है।

यकीन न हो तो, जब कभी यौवन तुम्हें मिले, तुम स्वयं देख लेना। मेरे चुम्बनों का एकाध निशान, उसके शरीर पर तुम्हें, देखने को मिल जाएगा।

मैं किरणमय हो चुका हूँ, क्योंकि किरण-वर्षा में गुजर चुका हूँ। तुम काव्यमय हो चुकी हो, क्योंकि कविप्रिया बन चुकी हो। मैं चाहता हूँ, यह 'किरणवर्षा' जारी रहे इसी तरह मुझ पर। और मैं पिघला सकूँ अपनी समस्त प्रविधियाँ। तुम भी इच्छुक हो, कवि-प्रेयसी के रूप में, आत्मसात कर सको। एक कवि की कोमलतम भावनाएँ, तीव्रतम वासनाएँ और गहनतम आवेग।

हमारे संबंध कितने वैध है और कितने अवैध? यह कानून और समाज की समस्या है, हमारी नहीं। स्वयं हमारी समस्या मात्र इतनी है कि ये वैध या अवैध संबंध (जैसे भी है), कैसे इसी प्रकार, आगे भी बने रह सकते हैं।

कितनी बार मैं मिला तुम्हारे घर? कितनी बार तुम मिली मेरे घर? इसके अतिरिक्त गुमनाम होटलों, पार्कों के सुनसान कोनों और दूसरी एकांत जगहों में? कुछ याद है तुम्हें?

याद है एक बार कहा तुमने, 'क्यों न हम उड़ चलें किसी दूसरी दुनिया में?' मैंने पूछा, 'लेकिन तुम्हारी पी-एच० डी० का क्या होगा? और तुम्हारे पति का स्टेटस? पारिवारिक और सामाजिक सुरक्षा? छोड़ सकती हो इन सबको?'

तुम हो गई थीं मौन, और मैं अधिक मुखर, 'मेरे पास है ही क्या सिवाय एक मामूली नौकरी के। मैं तुम्हें आधी सुविधाएँ तक नहीं दे पाऊँगा।' 'तब ऐसे कब तक?' प्रश्न था तुम्हारी प्रत्येक नि

नोट-बुक यानी पडी है इनके आगे। लेकिन समय नहीं रुका आगे
। गुजारे थे बमरौली में किसी तरह, एक-दो नहीं पूरे तीन साल।
स्तुत है कुछ और प्रसग, सूचनार्थ।

पूरा किया किरण ने पी-एच० डी० का शोध-प्रबन्ध, 'समकालीन
रिवेश में भारतीय नारी की स्थिति'। उसमें किए उसने कई सर्वेक्षण,
जनवा किया मैंने विश्लेषण। निष्कर्ष जो भी निकले, उनमें संशोधन
सुझाए, निजी दृष्टिकोण से।

गाइड महोदय के पास पहुँची जब थीसिस, तो उन्होंने भी कई
सुझाव दिए। किरण ने एक दिन बताया स्वयं ही—'गाइड महोदय ने
हस्ताक्षर करने में, आनाकानी की थी। थीसिस को वे कुछ दिन, रोक
लेना चाहते थे अपने पास। पर मैंने उन्हें कन्विंस कर दिया, साथ ही
विशेष निवेदन भी किया। तो उन्होंने बिना पढ़े ही, थीसिस की संस्तुति
कर दी।

किरण बनी 'डाक्टर', दिखलाई मैंने पिक्चर। क्योंकि 'उमराव जान'
उसी दिन रिलीज हुई थी। पर विचित्र मन स्थिति थी, उस दिन उसकी।
तदनुसार हरकतें भी, अजीब ही।

लौटते हुए बोली, 'हर औरत 'उमराव जान' है। जिसके साथ रहती
है उसके साथ नहीं होती। जिसके साथ होती है, उसके साथ रह नहीं
सकती।' 'लेकिन 'उमराव' को तो तीन-तीन नायक मिले। कितनी खुश-
किस्मत थी वह!' कहा मैंने। 'नायक नहीं खलनायक थे,' टोका उसने
'हर बार और अकेला करके, चले गए अपने-अपने रास्ते।'

मैं सिहरा, कहाँ गई नैसर्गिक चपलता? क्यों अपना ली यह
सामुद्रिक गम्भीरता? हँसकर ध्यान हटाने की चेष्टा की, 'तुम 'उमराव'
से तुलना क्यों कर रही? तुम्हारे पास तो पालक पति है, प्रचालक प्रेमी।
दो-दो नायक सेवा करने को, पूरी तरह प्रस्तुत है कृतसंकल्प!'

'तीसरे भी हैं, महामना गाइड महोदय। लेक्चररशिप दिलवाएँगे
मुझे।' कहकर किरण ने धारण किया अपूर्व मौन। भूल गई वह अपनी
सहज उन्मुक्त हँसी।

अगले दिन हवाई चालक पति की ओर से, पत्नी के सम्मान में आयोजित शानदार डिनर। मैं भी आमंत्रित था, अनेक हवाईपरिवारों के बीच। उधर गाइड महोदय भी शामिल हुए, आशीर्वादी मुद्रा में।

पति ने बहुत आभार जताया मेरा, निरन्तर सहयोग के लिए। फिर वे गाइड महोदय की ओर मुखातिब हुए। विनम्रतापूर्वक उन्हें भी धन्यवाद देने लगे।

तभी गाइड महोदय ने, कुछ कान में कहा उनके। पति ने तब पहली बार, देखा अविश्वास से—मुझे और अपनी पत्नी को।

किरण समझ न पाई कुछ, क्योंकि थी अति व्यस्त, अतिथि-सत्कार में। अतिथि आ-जा रहे थे, लेकिन प्रतीति हुई मुझे—'मेरे आतिथ्य का अंतिम भोज, आयोजित हो चुका आज।'

गलतफहमियों का स्पष्टीकरण देने से, गलतफहमियाँ दूर नहीं होती है। किरण ने भी जो दिए स्पष्टीकरण, वे उसके पति ने किए स्वीकार। लेकिन इस शर्त पर—'भविष्य में नहीं रखोगी, राइटर से किसी भी तरह का संपर्क।' 'पति परमेश्वर होता है, चाहे पत्नी पी-एच० डी० ही क्यों न हो'—यह सत्य उसी दिन, उद्घाटित हुआ मेरे समक्ष।

'उमराव जान' तो अमर हो चुकी, एक सशक्त शायर की लेखनी से, एक शताब्दी पहले ही। किन्तु ओ किरण! तुम्हारा जो विकिरण, अवशोषित हुआ मेरी देह और आत्मा में। उसे क्या मैं परावर्तित कर पाऊँगा इस प्रकार, कि वह पहुँच सके पाठकों तक। और वे इस रेडिएशन से, नष्ट कर सकें अपनी ग्रंथियाँ।

डॉ० वीरेन्द्र सक्सेना

जन्म : १ अगस्त १६४१

शिक्षा . एम० ए०, एम० एस-सी०, पी-एच० डी०

संप्रति : केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय), नई दिल्ली में सहायक निदेशक

संपर्क १८/११, पुष्पविहार, साकेत
नई दिल्ली-११००१७